पुण्यधाम सेवाग्राम

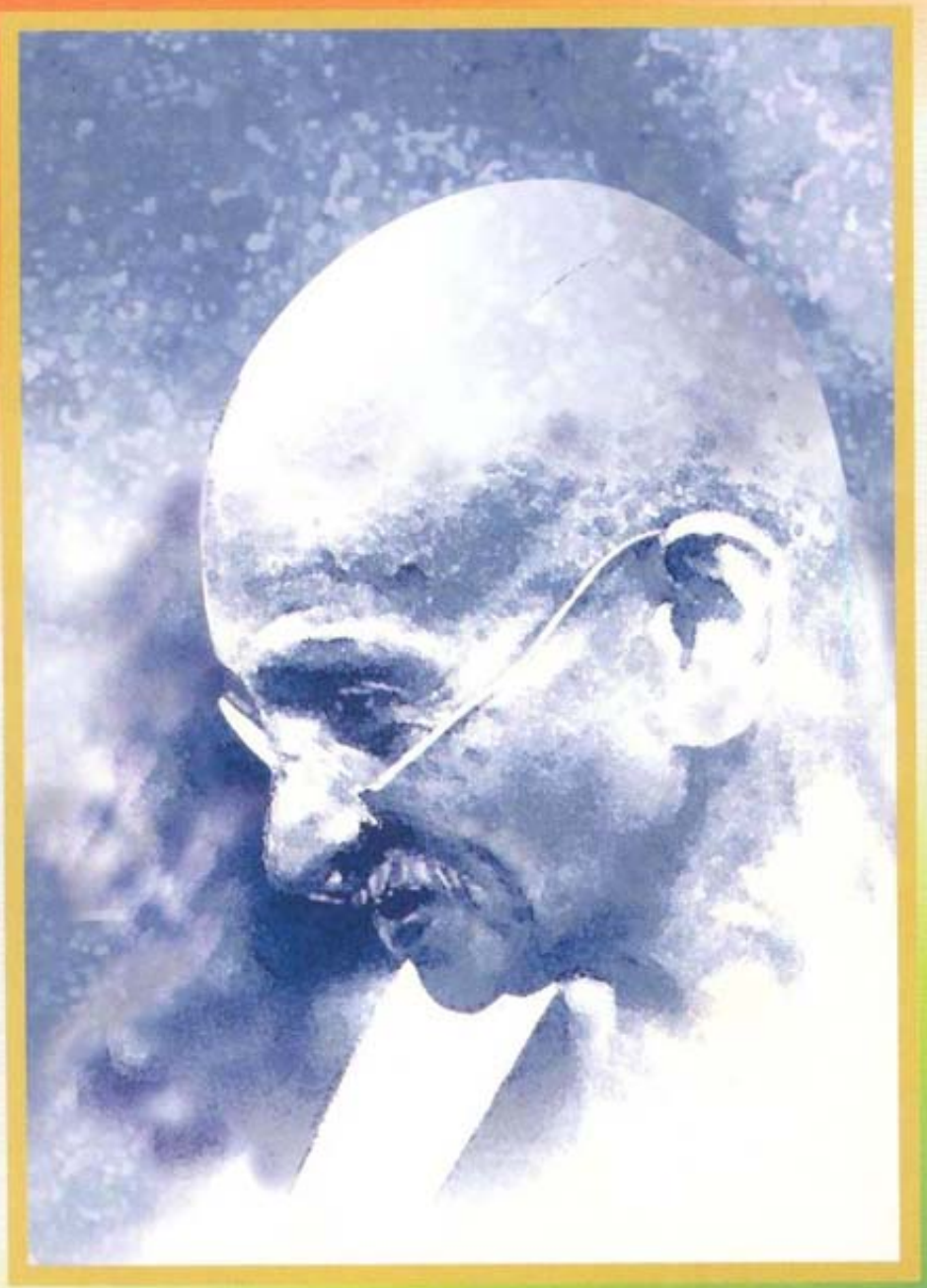

प्रेमा कंटक

अनुवादः
कनकमल गांधी

पुण्यधाम सेवाग्राम

प्रेमा कंटक

अनुवाद : कनकमल गांधी

गांधी सेवा संघ सेवाग्राम आश्रम

प्रकाशक :

गांधी सेवा संघ,

महादेवभाई भवन

सेवाग्राम-वर्धा ४४२१०२

फोन : 07152 -- 284725

सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान

सेवाग्राम-वर्धा (महाराष्ट्र)

फोन : 07152 -- 284753

संस्करण – पहला

१२ फरवरी २०१३

प्रतियाँ – १०००

कीमत – १०० रुपया

मुद्रक :

परंधाम मुद्रणालय,

पवनार-वर्धा

प्रकाशकीय

'पुण्यधाम सेवाग्राम' पुस्तक पूज्य अण्णासाहब सहस्रबुद्धे की प्रेरणा से १९६९ में आदरणीया प्रेमाबहन कंटक ने मराठी में लिखी थी। उसका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित करने का सोचा गया था, परन्तु वह काम टलता रहा। मराठी संस्करण से काम चलता रहा, लेकिन अनेक वर्षों से मराठी संस्करण भी अनुपलब्ध है। सेवाग्राम आश्रम के बारे में अधिकृत जानकारी देनेवाली पुस्तक की मांग बनी रहती है।

अत: 'पुण्यधाम सेवाग्राम' का हिन्दी संस्करण प्रकाशित करके हमें प्रसन्नता है। इस संस्करण को प्रकाशित करने में गांधी सेवा संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष आ. वसन्त गोविन्द आपटे गुरुजी तथा चि. मयंक विजय उंबरकर का आर्थिक सहयोग रहा, अत: हम कृतज्ञ हैं।

राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय, नई दिल्ली ने भी अपने संग्रह से फोटो बनाकर अमूल्य सहयोग दिया, इसलिए वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। इस मदद से पुस्तक के फोटो की गुणवत्ता सुधारने में मदद हुई। भाई अभय प्रताप ने प्रकाशन की दृष्टि से भाषा-सुधार आदि कामों में तथा चरणदास भुजाडे ने पाण्डुलिपि टाईप करने में मदद की, अत: उनका भी आभार। परंधाम पवनार प्रेस के श्री रणजित्भाई ने सारी छपाई व्यवस्था सुचारु ढंग से समय पर पूरी की क्योंकि उन्होंने इसे अपना ही काम माना है।

आशा है सेवाग्राम के दर्शनार्थियों तथा शिविरार्थियों को इस पुस्तक का उपयोग होगा। अन्य जिज्ञासुओं को भी यह पुस्तक सेवाग्राम के गांधीजी के जीवन के बारे में अधिकृत जानकारी देगी।

कनकमल गांधी

अध्यक्ष

गांधी सेवा संघ

सेवाग्राम-वर्धा

दि. ३० जनवरी, २०१३

दो शब्द

पुण्यधाम सेवाग्राम पुस्तक लिखकर कुमारी प्रेमाबहन कंटक ने एक बहुत स्तुत्य व उपयोगी कार्य किया है। इस पुस्तक में उन्होंने सेवाग्राम आश्रम की व्यवस्थित जानकारी प्रस्तुत की है जिससे पाठकों को पूज्य बापूजी व पूज्य बा की प्रवृत्तियों का गहरा ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

पुस्तक में राष्ट्रपिता गांधीजी के जीवन के विभिन्न पहलुओं के विवेचन के अलावा महिला-आश्रम आदि वर्धा की संस्थाओं की जानकारी भी दी गई है। पूज्य बापूजी के नजदीक के साथी श्री किशोरलालभाई, श्री जमनालालजी, श्रद्धेय जाजूजी व श्री धर्मानंद कोसम्बी के जीवन की झलक भी मिल सकेगी।

लेखिका ने इस पुस्तक को तैयार करने में जो अथक परिश्रम किया है उसके लिए मैं सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान की ओर से उन्हें हार्दिक धन्यवाद व बधाई देता हूँ। गांधी-शताब्दी के अवसर पर सेवाग्राम आनेवाले अतिथियों व कार्यकर्ताओं को यह पुस्तक रुचिकर प्रतीत होगी, ऐसी आशा है।

– श्रीमन्नारायण

राजभवन, अहमदाबाद
२६ दिसंबर, १९६८

पुण्यधाम का परिचय

दक्षिण अफ्रीका गांधीजी की प्रयोग भूमि थी। गांधीजी को वहाँ मानवता का विराट दर्शन हुआ। महायुद्ध की आग से मनुष्य जाति को बचाने के लिये उन्हें वहाँ सत्याग्रह जैसे सात्विक तथा तेजस्वी साधन का भी दर्शन हुआ। वहाँ का अनुभव साथ लेकर वे अपनी कर्म भूमि पर आये और रचनात्मक कामों के बल पर राष्ट्र की एकता का दर्शन करवाया तथा देश को स्वतंत्रता दिलाई। इस महान राष्ट्रीय प्रयोग की अवधि में उनका स्थायी निवास दो स्थानों पर रहा- १९१५ से १९३० तक वे अहमदाबाद में साबरमती आश्रम में रहे तथा बाद में १९३६ से करीब-करीब अंतिम दिनों तक उनका निवास रहा सेवाग्राम-वर्धा। इन दोनों स्थानों का स्वतंत्र इतिहास देश-दुनिया को मिलना चाहिये। साबरमती सत्याग्रह आश्रम का इतिहास मैंने गांधीजी से मांगा। यरवदा जेलवास की अवधि में उन्होंने इस इतिहास के कुछ नोट्स लिखे थे। उन्हें स्वयँ को वे संतोषजनक नहीं लगे थे। परन्तु उनके देहावसान के पश्चात् उन्हें उसी रूप में प्रकाशित करने के अलावा दूसरा चारा नहीं था।

सेवाग्राम आश्रम का इतिहास १९३६ से अंत तक वहाँ रहनेवाले किसी को लिखना चाहिये। यह काम कौन करे यह अभी तक तय नहीं हुआ है, इसी बीच 'पुण्यधाम सेवाग्राम' के कुछ संस्मरण ताजे रहें तथा समाज में उपलब्ध रहें इस हेतु से गांधी परिवार की राष्ट्र सेविका कुमारी प्रेमाताई कंटक ने यह छोटी-सी पर मधुर पुस्तक लिखी है। जिस तरह प्रेमा बहन साबरमती आश्रम में रहीं तथा वहाँ गांधीजी के मार्गदर्शन में महत्वपूर्ण काम किये, वैसा अनुभव उन्हें महाराष्ट्र में रहने पर भी सेवाग्राम आश्रम के बारे में नहीं मिला। अधिकतर जानकारी उन्हें सेवाग्राम आश्रम में रहे लोगों से ही एकत्र करनी पड़ी। ऐसी सारी जानकारी एकत्र करके

आश्रम का एक सांगोपांग इतिहास लिखना उनके लिये संभव था। परन्तु वह मेरा काम नहीं, ऐसा मानकर उन्होंने ये छोटे-छोटे संस्मरण लिखे हैं। इसके लिये उन्हें सेवाग्राम से सम्बन्ध रखनेवाले जो फोटो मिले, उनका उत्तम उपयोग उन्होंने इस पुस्तक में किया है।

पुस्तक के महत्व को देखते हुए इन चित्रों का प्रकाशन और अधिक अच्छी तरह से होना चाहिये था। फिर भी, इतने चित्र एकत्र करके उनका संदर्भ भी उन्होंने दिया, यह भी काफी बड़ा काम हुआ है।

उपयोगी पुस्तक जितनी जल्दी पूरी हो जाय तथा गांधी जन्म-शताब्दी के प्रारम्भ में ही वह जनता के हाथों में पहुँच जाय, इस दृष्टि से प्रेमाबहन ने अपने पर बहुत बंधन लगाये हैं।

गांधी जी ने कुष्ठरोगी परचुरे शास्त्री की सेवा सेवाग्राम में की, उसका वर्णन करते समय उन्हें दत्तपुर के कुष्ठधाम का भी उल्लेख करना पड़ा। परन्तु उसी प्रकार का काम, उसी प्रकार की निष्ठा से तथा उसी प्रकार की गांधी-पद्धति से अमरावती के पास श्री शिवाजीराव पटवर्धन कर रहे हैं, इसका स्मरण प्रेमाबहन को न हो, यह संभव नहीं। परन्तु वह वर्णन उनकी मर्यादा में नहीं बैठा होगा।

१९३० के नमक सत्याग्रह के पश्चात् गांधी जी गुजरात छोड़कर रहने के लिये वर्धा गये। उसी काल में मैं भी उनके पीछे-पीछे वर्धा पहुँच गया था और जबतक गांधी जी सेवाग्राम में रहे तबतक मैं भी वर्धा में टिका रहा। मैं सेवाग्राम में नहीं रहा, पर मेरा वहाँ जाना-आना नियमित होता रहता था। शायद इसी को ध्यान में रखकर प्रेमाबहन ने अपने संस्मरणों के लिये मुझसे (आमुख के रूप में) दो शब्द लिखने को कहा। सामान्यतः ऐसे संस्मरणों में बड़े-बड़े लोगों के ही नाम आते हैं। प्रेमाबहन ने ऐसा कोई प्रतिष्ठा का बंधन न मानकर सब प्रकार के और सब प्रान्तों के अनेक छोटे-बड़े सेवकों के नाम इस पुस्तक में दिये हैं। इनमें अभी बड़े हो गये श्री झवेरभाई पटेल रह गये हैं, यह शायद कोई भूलचूक मात्र होगी। मैं तो यहाँ तक कहूंगा कि यहाँ उन लोगों का वर्णन ज्यादा

विस्तार से देना चाहिये था जिनके बारे में अन्यत्र कोई जानकारी शायद ही आये।

प्रेमाबहन खुद सेवाग्राम में नहीं रहीं, फिर भी उन्होंने गांधीजी के १२-१५ वर्ष के सेवाग्राम वास के दिनों के अनेक छोटे-बड़े प्रसंगों का वर्णन कर गांधी साहित्य में एक बड़ा योगदान दिया है। और गांधी-युग का इतिहास लिखने वाले के लिये बहुत सुविधा कर दी है।

गांधीजी की देश सेवा संसार के समक्ष है। गांधीजी द्वारा प्रारम्भ की हुई तथा चलाई हुई अनेक प्रकार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ आज भी कम-ज्यादा परिमाण में विकसित होती हुई हम देखते हैं। परन्तु गांधीजी ने जिन असंख्य व्यक्तियों को योग्य सलाह-सूचना देकर उनका जीवन निर्माण करने में योगदान दिया तथा उन सबके परिवारों में प्रवेश करके समाज जीवन को एक नयी, विशुद्ध और प्रेरक राह दिखलाई, इस सबका इतिहास हमें कहाँ से मिल सकेगा? गांधीजी के इस मौलिक पहलू का थोड़ा-सा उल्लेख पुण्यधाम सेवाग्राम में हमें मिलता है, इससे भी इस पुस्तक का महत्व बढ़ गया है।

दक्षिण अफ्रीका में अपना काम पूरा करके भारत आने पर गांधीजी ने जो देश सेवा की तथा जिस मानव सेवा को विकसित किया, इसका उत्तरार्ध इस पुस्तक में प्रतिबिंबित हुआ है। इस दृष्टि से भी उस युग के अनुभवी पाठकों को अपने पास की जानकारी प्रेमाबहन के पास भेजनी चाहिये और उन्हें शीघ्रातिशीघ्र समय निकालकर इस पुस्तक की संशोधित आवृत्ति गांधी प्रेमीजनों के समक्ष प्रस्तुत करनी चाहिये। जो अच्छा काम कर दिखाते हैं, उन्हीं से अधिक सेवा की अपेक्षा रखी जाती है।

-काका कालेलकर

२५-१२-१९६८

लेखकीय

१ जून १९६७ को मैं सेवाग्राम आश्रम में रहने के लिये आई। उन दिनों श्री अण्णा साहब सहस्रबुद्धे ने मुझे सुझाया कि, सेवाग्राम आश्रम की स्थापना से लेकर गांधीजी के अवसान तक का आश्रम का इतिहास फोटो की सहायता से लिख डालो। फोटो सिर्फ सेवाग्राम आश्रम में लिये हुए ही होने चाहिये। इस तरह की पुस्तक का उद्देश्य भी उन्होंने बतलाया। हर वर्ष सेवाग्राम आश्रम देखने के लिये करीब ३०००० दर्शनार्थी आते हैं। ऐसे लोगों के लिये आश्रम की जानकारी देनेवाली पुस्तक बहुत उपयोगी होगी। पुस्तक ऐसी हो जो 'छोटी, सरल और सुन्दर होने के साथ ही सस्ती भी हो।' उनकी कल्पना मुझे एक मार्गदर्शिका जैसी पुस्तक बनाने की लगी। परन्तु जब पुस्तक के बारे में मैं सोचने लगी तो मैंने उनसे कहा कि 'मुझसे ऐसी पुस्तक नहीं लिखी जायेगी। मेरी पुस्तक तो साहित्यिक स्वरूप की होगी।' उन्होंने इसके लिये सम्मति दी और मैं पुस्तक की दृष्टि से सामग्री एकत्र करने में लगी।

नवम्बर १९६७ के आखिर में श्री कनु गांधी के पास से पचास फोटो आये। उनमें से भी उपयुक्त फोटो चुने। १९४० में स्व. महादेवभाई देसाई ने कनु गांधी के कुछ फोटो का आधार लेकर इलस्ट्रेटेड वीक्ली (Illustrated Weekly) के लिये एक लेख लिखा था वह लेख भी कनु गांधी ने मुझे भेज दिया। श्री बलवंत सिंह की पुस्तक 'बापू की छाया में' और श्री चिमनलाल भाई शाह की नोंध बही का यह पुस्तक तैयार करने में मुख्य उपयोग हुआ है।

१२-१३ फरवरी १९६८ को सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान की बैठक हुई। उसमें इस पुस्तक के बारे में चर्चा हुई और यह निश्चय हुआ कि २-१०-१९६९ तक इस पुस्तक का हिन्दी और अँग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किया जावे।

तदनंतर महात्मा गांधी राष्ट्रीय स्मारक निधि के मंत्री श्री

देवेन्द्रकुमार गुप्ता मुझे बुलाकर दिल्ली ले गये और उनके संग्रह में से फोटो चुनने को कहा। उनके संग्रह में से भी कुछ फोटो मैंने चुने। जिन फोटो की जानकारी मिल सकी सिर्फ वे ही इस पुस्तक में दिये गये हैं।

छपाई के लिये विशिष्ट प्रकार के फोटो होने चाहिये। उस प्रकार से फोटो तैयार हों तो वे अच्छे छपते हैं। इस पुस्तक के सभी फोटो उस तरह की विशिष्ट पद्धति से नहीं निकाले गये हैं, अतः कुछ फोटो अस्पष्ट आये हैं। हिन्दी व अँग्रेजी अनुवाद में इनकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट फोटो देने का प्रयास रहेगा।

यह पुस्तक लिखने में मुझे किसी तरह का परिश्रम नहीं हुआ और न ही कोई कष्ट हुआ। मेरे महान गुरु आज सशरीर उपस्थित नहीं हैं फिर भी उनकी चेतना कायम है। उनके दिव्य व्यक्तित्व तथा भव्य पुरुषार्थ का वर्णन करने में मेरे मन तथा कलम को नवजीवन का अनुभव आता रहा । अनेक पवित्र संस्मरण ताजे होते रहे।

मेरी उनकी प्रीति पुरानी, उन बिन पल न रहाऊं -मीरा

अपने सद्गुरु की लीलाओं का वर्णन करते समय मन भाव-समाधि में लीन हो गया था, तो फिर किसी कष्ट का भान कैसे होता? मेरे लिये लिखना एक आनन्द का विषय हो गया था।

– प्रेमा कंटक

आश्रम सेवाग्राम

३१-१२-१९६८

अनुक्रम

	पृष्ठ
I. प्रकाशकीय	३
II. दो शब्द	४
III. पुण्यधाम का परिचय	५
VI. लेखकीय	८
१. सेवाग्राम की बापू कुटी	११
२. योगी का संसार	१४
३. राष्ट्रमाता	१८
४. गाँव के दु:ख	२१
५. पौधा पनपा	२४
६. कुशल नेता	२७
७. दिग्विजय का मूल्य	२९
८. धर्म का साक्षात्कार	३३
९. करुण और भव्य	३६
१०. अध्ययन का मर्म	३८
११. ग्रीष्म ऋतु के शीतोपचार	४०
१२. संघ शक्ति से सेवायोग	४३
१३. करुणा का काव्य	४५
१४. ग्रामोद्योग	४७
१५. शिक्षा में क्रांति	५०
१६. लोक संग्रह	५४
१७. हिंसा के जबड़े में	५८
१८. वानप्रस्थी की गृहस्थी	६१
१९. गाँव में भारत-दर्शन	६६
२०. बैलों का त्यौहार	६९
२१. गोवंश विस्तार	७२
२२. या देवी शक्तिरूपेण	७५
२३. चराति चरतो भग:	८०
२४. बादशाह खान	८३
२५. ग्रहमाला का सूर्य	८५
२६. शंका समाधान	८७
२७. अहिंसा परमो धर्म:	९०
२८. आश्रम में टेलीफोन	९३
२९. कसौटी के प्रसंग	९५
३०. संत-समागम	९८
३१. किशोरलाल भाई	१०१
३२. महिला आश्रम	१०३
३३. कानून भंग	१०६
३४. ये यथा मां प्रपद्यन्ते	१०८
३५. कुटुम्बवत्सल गांधीजी	१११
३६. पुत्र-वियोग	११३
३७. लूई फिशर की भेंट	११८
३८. दिव्य आहुति	१२१
३९. अगस्त आन्दोलन व उसके बाद	१२४
४०. विरोध	१२८
४१. स्मारक	१३१
४२. विवाहोपरांत संयम	१३४
४३. बीमारी	१३७
४४. गाँव और आश्रम	१३९
४५. धर्मानन्द कोसम्बी	१४४
४६. उपसंहार	१४७
४७. सेवाग्राम सेवकों के लिए	१५०
४८. सेवाग्राम आश्रम का नक्शा	१५४

१. सेवाग्राम की बापू कुटी

जैथ आराणुकेचेनि कोडें। बैसलिया उठों नावडे।
वैराग्यासी दुणीव चढ़े। देखिलिया जें ।।१६४।।
जो संतीं बसविला ठावो। संतोषासि वावो।
मना होय उत्सावो। धैर्याचा ।।१६५।।

– ज्ञानेश्वरी अध्याय ६

(अर्थः– जिस स्थान पर सहज बैठने पर भी ऐसा समाधान प्राप्त होता है कि वहाँ से उठने की इच्छा ही नहीं होती तथा जिसे देखते ही वैराग्य की प्रेरणा द्विगुणित हो जाती है। जहाँ संतों ने निवास किया है और जिस स्थान से समाधान को प्रोत्साहन मिलकर मन में धैर्य का उत्साह उत्पन्न होता है।)

१९३० में आरम्भ हुए नमक सत्याग्रह का देशव्यापी आन्दोलन जब महात्मा गांधी ने १९३४ के मध्य में वापस ले लिया तब उन्होंने अपना ध्यान गाँवों की तरफ मोड़ा। करीब डेढ़ वर्ष वर्धा में रहकर उन्होंने ग्रामोद्योगों का पुनरुज्जीवन, ग्राम–सफाई तथा भोजन सम्बन्धी प्रयोग आदि प्रवृत्तियाँ चलाई। फिर भी उन्हें संतोष नहीं था। आखिर गाँव में जाकर रहने का उन्होंने निर्णय किया और तदनुसार ३० अप्रैल १९३६ को प्रातः पाँच बजे उन्होंने वर्धा से सेगाँव के लिये प्रस्थान किया। उस समय वे यहाँ चार–पाँच दिन रहे। गाँव के लोगों को एकत्र करके उन्हें अपना आने का उद्देश्य बतलाया। लोगों ने उनको वहाँ रहने की सम्मति दी। गांधीजी को रहने के लिये घर नहीं था। पहली झोंपड़ी 'आदि निवास' उस समय बाँधी जा रही थी। गांधीजी पुनः वर्धा गये और करीब दो महीने बाद १६ जून को सेगाँव आये। उसके बाद वे यहाँ स्थाई रूप से रहे।

वर्धा से चार मील की दूरी पर सेगाँव गाँव है। यह गाँव जमनालाल बजाज की मालगुजारी का गाँव था। आसपास जमनालालजी की खेती थी। उसमें से एक एकड़ जमीन गांधीजी ने आश्रम के उपयोग में

ली। उसी पर आश्रम की विविध झोंपड़ियाँ बनीं।

प्रारम्भ में गांधीजी कस्तूरबा सहित आदि निवास में रहे। बाद में उससे करीब ७५ फीट उत्तर की तरफ मीरा बहन ने अपने लिये एक झोंपड़ी बनवाई। थोड़े ही दिनों में आदि निवास में बहुत भीड़ हो गई, इसलिये गांधीजी उस झोंपड़ी में रहने गये और मीरा बहन ने अपने लिये पूर्व में पास ही दूसरी झोंपड़ी बना ली। बाद में वह भी उन्होंने गांधीजी के लिये छोड़ दी। ये दोनों झोंपड़ियाँ आगे जाकर 'बापू कुटी' तथा 'बापू दफ्तर' के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

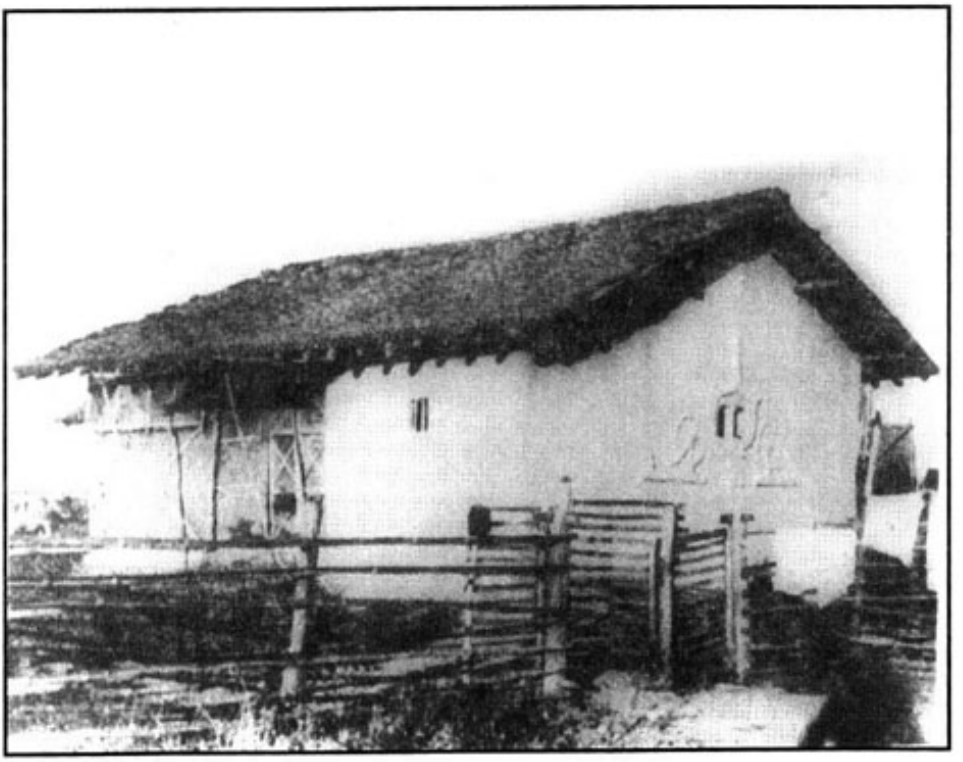

बापू कुटी में कुछ वृद्धि की गई। गाँव के गरीब लोगों के जीवन से समरस होने की चाह मन में लेकर गांधीजी सेगाँव में रहने आये थे। वे देश के करोड़ों किसानों के प्रतिनिधि थे। इसलिये उनसे अलग या खर्चीला जीवन उन्हें कैसे पसन्द आ सकता था। उनकी झोंपड़ी खजूर के पेड़ के लम्बे पत्तों व मिट्टी से बनी है। दीवालें चिकनी बनी हैं। मीरा बहन ने अपने हाथों ग्रामीण चित्रकारी दीवालों पर की है। सेगाँव में सर्वत्र

दिखनेवाले खजूर के वृक्ष तथा मोर के चित्र यहाँ हैं। ध्यान का प्रतीक ओम् तथा श्रम का प्रतीक चरखा ये दोनों भी दीवाल पर विराजमान हैं। छत पर देशी कवेलू लगाये गये हैं। कमरे, खिड़की तथा दरवाजे सभी की बनावट ग्रामीण है। बैठने के लिये घास की बनी चटाइयाँ (केरल या जापान से लाई हुई नहीं, सेगाँव में तैयार की हुई) बिछी हुई हैं। गांधीजी की बैठक का स्थान शुद्ध खादी वस्त्रों से आच्छादित है। गिने-चुने व आवश्यक सामान ही कुटिया में रखे जाते थे। अपरिग्रह का नमूना इस कुटी में प्रत्यक्ष दिखता है। दीवालों पर कोई चित्र नहीं है, परन्तु सदाचार व सद्विचार के प्रेरक वचन टँगे हुए हैं। आज भी (१९६८-६९ में) वे अक्षर वहाँ दिखते हैं। हवा से कागज न उड़े इसलिये गांधीजी पत्थरों का उपयोग करते थे। वे पत्थर आसपास से प्राप्त टेढ़े-मेड़े पर आकर्षक हैं। उनके कमरे में सबसे ज्यादा आकर्षक वस्तु चीनी मिट्टी की बनी खिलौने जैसी तीन बन्दरों की मूर्ति है। तीन गुरु जैसे तीन बंदर। एक ने अपने दोनों हाथों से अपनी आँखें बंद कर रखी हैं। दूसरे ने अपने दोनों कान ढँक रखे हैं और तीसरे ने अपना मुँह बन्द कर रखा है। ये मिट्टी के बंदर प्रवास में भी गांधी जी के साथ रहते थे। 'सतत् जागरूक रहने के लिये मैं इनका उपयोग करता हूँ' ऐसा वे कहते थे। आश्रम भजनावली में संत तुकाराम के एक भजन का सार मानो वे बंदर सिखा रहे हों।

पापाची वासना नको दाऊं डोळां। त्याहुनी आंधळा बराच मी।।
निंदेचें श्रवण नको माझे कानीं। बधिर करोनी ठेवीं देवा।।
अपवित्र वाणी नको माझ्या मुखा। त्याजहुनि मुका बराच मी।।

(हे प्रभो, मेरी आँखों में पाप की वासना न हो। उसके बजाय तो मैं अंधा रहना पसंद करूंगा। मेरे कान किसी की निंदा न सुनें। उससे अच्छा तो मुझे बहरा रहने दो। मेरे मुख से अपवित्र शब्द न निकलें। उसकी जगह तो मैं गूंगा रहना पसंद करूंगा।)

गांधीजी की अभिरुचि यह दर्शाती है कि उन्हें जीवन की सच्ची कला का ज्ञान था। कला के नाम पर सर्वत्र शोरगुल मचानेवाली नकल

उन्हें पसन्द नहीं थी। उनके शुद्ध संस्कारी जीवन में समृद्धि और सुरुचि का पूर्ण ऐक्य हुआ था। और इसीलिये इस गरीब झोंपड़ी का आकर्षण देश-दुनिया के अनेक विद्वानों को हो गया था। इस सत्यनिष्ठ और अहिंसाभक्त कर्मयोगी के निवास से झोंपड़ी को दिव्यत्व प्राप्त हो गया था। राजघरानों के निवासी, धनवान व्यापारी, अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान, देश-विदेश के राजनीतिज्ञ, नेता व प्रसिद्ध अखबारों के संपादक और वार्ताकार सभी ने इस झोंपड़ी का दर्शन कर इसमें रहनेवाली दिव्य विभूति का संदेश सुना है। इतना होने पर भी यह झोंपड़ी मुख्यतः गरीब, दलित, पीड़ित व रोगी - इन सबका आश्रय बनी है। यहीं रहकर गांधीजी ने स्वतंत्रता की अंतिम लड़ाई की तैयारी के लिये तीव्र तपस्या की थी। इस झोंपड़ी की शान्ति से ही उन्हें प्रेरणा मिलती थी। अनेक महत्वपूर्ण निर्णय उन्होंने यहीं लिये। झोंपड़ी के अन्दर का तथा बाहर का वातावरण गांधी जी की चेतना से व्याप्त है। घट फूटने पर घटाकाश और महदाकाश दोनों मानो एक हो गये।

० ० ०

२. योगी का संसार

निष्कंटकेऽपि न सुखं वसुधाधिपत्ये
कस्यापि राजतिलकस्य यवेष दोषः।
विश्वेश्वरो भुजगराजविभूतिभूषो
हित्वा तपस्यति चिरं सकला विभूतिः।।

(पूरी पृथ्वी का निष्कंटक राज्य मिल जाने पर भी किसी महान राजा को सुख नहीं मिला (इसलिये) प्रचण्ड सर्प व भस्म जिसके अलंकार हैं, वह विश्वेश्वर सभी विभूतियों का परित्याग करके सदा सर्वदा तपस्या में लीन है।)

तप यानी मुख्यतः इंद्रियदमन - ऐसा अर्थ शास्त्रों ने किया है।

इसलिये जंगल में जाकर अथवा एकांत में रहना जरूरी नहीं है। गांधीजी की तपश्चर्या लोगों में रहकर चलती थी। जब कभी एकान्त की आवश्यकता लगती तो वे मौन लेते थे। श्री समर्थ के बारे में लिखे निम्न वचन गांधीजी पर भी लागू होते हैं –

श्री गुरु समर्थ एकांती बैसती। प्रांतींचे लोक दर्शनासि येती।
सकळ प्रांतींचा स्वामी परामर्श घेती। चिंता करिती विश्वाची।।

(श्री गुरु एकांत में बैठते हैं। सब लोग उनके दर्शनों के लिये आते हैं। स्वामी सभी से कुशलक्षेम पूछते हैं। वे सारे विश्व की चिंता करते हैं।)

सगाँव को बाद में सेवाग्राम नाम दिया गया। जब सेवाग्राम में जाकर रहने का विचार गांधीजी ने किया तब, वे अकेले ही यहाँ रहेंगे, ऐसा उनका विचार था। परन्तु गांधीजी जेल से बाहर थे अतः छाया के समान उनकी अनुगामिनी पत्नी कस्तूरबा यहाँ आकर रहने लगीं। ग्राम सेवा की अनेकविध योजनाएँ लोग गांधीजी के समक्ष रखने लगे और उसके अनुरूप सेवक लोग भी जमा होते गये। चरखा आया तो उसके साथ उसका परिवार भी आया। प्रारम्भ में गाँव की हवा में बीमारियाँ होने लगीं। इसलिये सर्वप्रथम दवाखाना और बाद में जाकर आरोग्य केन्द्र भी स्थापित हुआ। बच्चों व बूढ़ों के दूध के लिये गाय आई। उसके लिये गौशाला बनी। कुछ समय बाद गांधीजी ने देश के समक्ष बुनियादी शिक्षा की योजना प्रस्तुत की, उसके लिये सेवाग्राम शिक्षण-प्रयोगों का मुख्य केन्द्र बना। आगे जाकर नयी तालीम व्यापक रूप में फैलती गयी। जिन प्रान्तों में कांग्रेस की सरकारें थीं, वहाँ से सैकड़ों विद्यार्थी प्रशिक्षण के लिये सेवाग्राम आने लगे। इसके सिवाय खेती, बागवानी, ग्रामोद्योग – इनके भी विविध प्रयोग यहाँ होने लगे। स्व. जमनालालजी ने अपनी सेवाग्राम की सारी जमीन गांधीजी को दान दे दी तथा उसका दान पत्र भी कर दिया।

जहाँ पहले कृषि भूमि थी, वहाँ धीरे-धीरे झोंपड़ियाँ दिखने लगीं।

मूल सेगाँव गाँव के नजदीक ही एक सुंदर सेवाग्राम आश्रम बस गया। जमनालालजी की दी जमीन पूरी उपयोग में लेकर आश्रम ने और जमीन ली। इसका अर्थ लोकसंख्या भी उतनी तेजी से बढ़तीं गई। विविध भाषा बोलनेवाले विभिन्न प्रकार की पोशाकें पहनने वाले लोग यहाँ बसने लगे। देश ही नहीं, विदेश के लोग भी स्वेच्छा से यहाँ आकर रहने लगे।

गांधीजी का जीवन देश के समक्ष एक खुली पुस्तक के समान था। समाज में से दुःख व दरिद्रता दूर करने के लिये यह उनकी तपश्चर्या थी। देश के नेताओं को स्वामी विवेकानन्द ने नारा दिया था, 'सच्चा भारत गाँवों में फैला हुआ है।' उनके संदेश को सर्वप्रथम गांधीजी ने ही सुना। उन्होंने कहा कि देश का विकास करना हो तो सर्वप्रथम गाँवों का विकास करना होगा। गाँवों की जड़ता देश की जड़ता है।

दयेसाठीं केला उपाधि पसारा। जडजीवा तारा नावकथा।।

–तुकाराम

(तुमने दया करने के लिये इतना फैलाव किया। तुम्हारा नाम तथा कथा जड़जीवों को तारनेवाला है)

जड़जीवों का उद्धार करने के उद्देश्य से अपने अन्तर की ऊर्मि से प्रेरित हो गांधीजी एक अज्ञात व दरिद्र गाँव में जाकर रहे। वहाँ उन्होंने अपने आश्रम को सत्य-अहिंसा की प्रयोगशाला बनाया। अस्पृश्यता के महारोग को समूल समाप्त करने के लिये उन्होंने महा प्रयत्न किये। जिसे संसार मानवता की धर्मबुद्धि का रखवाला कहता था, जिसके पुरुषार्थ से ब्रिटिश साम्राज्य काँपने लगा था, ऐसा महापुरुष छोटे से गाँव में रहकर आदर्श ग्रामीण जीवन का पाठ लोगों को सिखा रहा था। दुर्भाग्य से ग्रस्त देश की मुक्ति के लिये तथा उसे संजीवनी प्राप्त हो इसके लिये गांधी जी ने अनेक प्रयोग किये।

सुवर्ण आणि परिमळ। हिरा आणि कोमळ।
योगी आणि प्रेमळ। हें दुर्लभ जी दातारा।

-नामदेव

(इस संसार में सुगन्धित सोना अथवा कोमल हीरा या प्रेमी स्वभाववाला योगी ये भगवान ने दुर्लभ बताये हैं।)

गांधीजी की तपश्चर्या इसी प्रकार की थी। दिनोंदिन उनमें मानवता की भावना उत्कर्ष प्राप्त करती जाती थी। साथ के चित्र में कुटिया की पार्श्वभूमि पर इस एकाकी योगी को देखकर लगता है-

नम्र झाला भूतां। तेणें कोंडिलें अनन्ता।।
हें चि शूरत्वाचें अंग। हारी आणिला श्रीरंग।।

- तुकाराम

(जो भक्त नम्र बनकर रहता है, ईश्वर उसके बस में होता है। शूरवीरता का यही लक्षण है। उसने भगवान को भी अपना दास बना लिया।)

० ० ०

३. राष्ट्रमाता

सर्व माझी जोडी पाय तुझे ।

– तुकाराम

(मेरा सर्वस्व तेरे चरण ही हैं।)

माता कस्तूरबा अपने पति के पाँव पर घी लगा रही हैं। दोनों का विवाह हुआ तब वर-वधू की उम्र मात्र तेरह वर्ष थी। उसमें भी बा गांधीजी की अपेक्षा उम्र में छह महीने बड़ी थीं। परन्तु अपना पूरा जीवन उन्होंने अपने पति के पाँव पर पाँव रखकर बिताया। बा पहले निरक्षर थीं, पर बड़ी उम्र में गांधीजी ने उन्हें गुजराती लिखना-पढ़ना सिखाया। हिन्दी और अँग्रेज़ी बोलनेवालों के साथ रहते-रहते उन्होंने दोनों भाषाएँ कामचलाऊ ढंग की सीख ली थी। उन्हें धार्मिक ग्रंथ पढ़ने में रुचि थी, गांधीजी के लेख भी वे ध्यानपूर्वक पढ़ती थीं। वे नियमपूर्वक प्रतिदिन सूत कताई करती थीं। कस्तूरबा पुराने संस्कारों में पली-बढ़ी थीं इसलिए अपने पति के कहने से अस्पृश्यता की भावना अपने व्यवहार में से पूरी तरह निकाल देना प्रारंभ में उनके लिये कठिन था। परन्तु उन्होंने निश्चयपूर्वक यह पाठ आत्मसात किया।

कस्तूरबा को पाँच बच्चे हुए। पहला बच्चा जन्म के साथ ही मर गया। शेष चारों पुत्र उनके मरने के बाद तक जिये। सभी बालकों का अपनी माँ पर प्रेम था। बड़े लड़के ने अपने पिता की निंदा की, व्यसनों की आदत लगा ली, स्वयँ अलग रहने लगा, फिर भी कस्तूरबा के बारे में उसके मन में अंत तक प्रेम व आदर बना रहा। दक्षिण अफ्रीका में कस्तूरबा जेल गईं। जेल से बाहर आईं तब वे मरणासन्न थीं। पति ने जी-जान से सेवा-सुश्रूषा करके उन्हें बचाया। स्वदेश आने पर भी वे आजन्म पति की अनुगामिनी रहीं। यहाँ भी वे अनेक बार जेल गईं। अँग्रेज़ सरकार उनकी इतनी इज्जत करती थी कि जब-जब गांधीजी जेल में उपवास करते, उस समय सरकार उन्हें गांधीजी के पास भेज देती थी।

सेवाग्राम आश्रम में उन्होंने प्रारंभ के दिनों में बहुत कष्ट सहे। गांधीजी आदि निवास के एक कोने में रहते थे, दूसरे कोने में बा रहती थीं। तीसरे कोने में बादशाह खान तथा चौथे कोने में आश्रम के एक कायकर्ता मुन्नालाल शाह रहते थे। इस प्रकार की व्यवस्था से बा को संकोच लगना स्वाभाविक था। स्त्री जाति की मर्यादाओं के कारण उन्हें कुछ तो एकान्त स्थान आवश्यक था। परन्तु गांधीजी उन्हें स्वतंत्र कमरा या झोंपड़ी बनाकर देने को राजी नहीं होते थे। अंत में बरामदे में थोड़ी-सी आड़ कर देने को राजी हुए। दो बाँस बाँधकर व टट्टे लगाकर उनका 'कमरा' बनाया गया। कस्तूरबा मान गईं, फिर भी उन्हें अनेक तरह के कष्ट होते ही रहे।

यह सब देखकर जमनालालजी को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने गांधीजी से काफी चर्चा की और आखिर में बा के लिए स्वतंत्र झोंपड़ी बना दी। उसे ही आज 'बा कुटी' के नाम से पहचाना जाता है। इस कुटी में भी अनेक बार बा को अनेक मेहमानों को साथ रखना पड़ता था, पर उन्होंने कभी शिकायत नहीं की। गांधीजी के साथ रहकर उन्होंने अनेक बातें सीख ली, गांधीजी के बृहत् परिवार की माँ बनने का कर्तव्य भी उन्होंने सहजता से निभाया।

१९४२ साल में उनकी तबियत बहुत बिगड़ गई। ५ अगस्त १९४२ को उन्होंने गांधीजी के साथ यह आश्रम छोड़ा, यही उनकी

अंतिम विदाई रही। उसके बाद वे कभी वापस नहीं आईं। ९ अगस्त १९४२ को बंबई में गांधीजी को गिरफ्तार किया गया और उन्हें पूना के आगाखाँ महल में रखा गया। उसके कुछ घण्टों बाद कस्तूरबा की भी गिरफ्तारी हुई और उन्हें भी सरकार ने गांधीजी के पास ही भेज दिया। इससे उन्हें जीवनपर्यंत पति सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस जेल में महादेवभाई का आकस्मिक अवसान तथा गांधीजी का २१ दिन का उपवास दोनों बहुत कष्टप्रद रहे। काफी दिन बीमार रहकर अंत में २२ फरवरी, १९४४ को महाशिवरात्रि के पवित्र दिन पति की गोद में बा ने चिरनिद्रा पाई।

इस महान साध्वी के स्मरणार्थ देश ने स्वत:स्फूर्त सवा करोड़ की निधि एकत्र करके गांधीजी को सुपुर्द की। कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक के नाम से उनका स्मारक देश ने बनाया।

० ० ०

४. गाँव के दुःख

दुःख दुसऱ्याचें जाणावें। ऐकून तरी वांटून घ्यावें।

– दासबोध

(दूसरों का दुःख जानो। सुनकर उसमें हाथ बँटाओ)

जहाँ सेवाग्राम आश्रम खड़ा हुआ, वह जगह पहले बंजर या खेती की थी। सेगाँव से लगकर ही यह जमीन थी। सर्वत्र सूखी परती जमीन दिखाई देती थी। कहीं वृक्ष भी नहीं थे। पानी की व्यवस्था नहीं थी। गांधीजी ने गाँव का आदर्श अपने मन में रखकर जब आश्रम बसाया, उनका आदर्श उस समय का दरिद्री सेगाँव शायद नहीं था। आश्रम पहले नक्शे में तैयार हुआ, बाद में प्रत्यक्ष आकार लेता गया। उसे पूर्ण स्वरूप प्रदान करने में श्री रामदासभाई गुलाटी जैसे अनुभवी और भक्त-साधक इंजीनियर की एकाग्र सेवा प्राप्त हुई थी। कुँआ खोदा गया,

वृक्षारोपण किये गये, सड़क के दोनों ओर जो वृक्ष आज दिखते हैं वे गांधीजी के जमाने में लगाये गये थे। गांधीजी व कस्तूरबा के लिये स्वतंत्र झोंपड़ियों की व्यवस्था हो जाने पर आदि निवास का उपयोग अन्य कार्यकर्ताओं तथा मेहमानों के लिये होने लगा। रसोई के लिये भी स्वतंत्र झोंपड़ी बनाई गई। फिर भी भोजन के लिये पूर्व की भाँति आदिनिवास के बरामदे का उपयोग होता रहा।

खेती की जमीन में आश्रम बनाकर रहने से सर्वप्रथम मच्छरों तथा मलेरिया का उपद्रव बहुत हुआ। इसके साथ ही कुँए के पानी से टाइफाइड आदि होने लगे इसलिए आश्रम में सर्वप्रथम सेवाकार्य – रोगियों की सेवा-सुश्रूषा ही शुरू हुई। गांधीजी को पहले से ही बीमारों की सेवा करने में रुचि थी। जैसे-जैसे उनका जीवन विशाल व भव्य होता गया, वैसे-वैसे उनमें कोमलता व वात्सल्य वृत्ति का विकास होता गया। आश्रम में अनेक व्यक्तियों की उन्होंने बीमारी में सेवा की। बीमार

को एनिमा देना, स्पंज करना, दवाई देना, रात को नींद में उठकर उनके हालचाल पूछना व औषधि देना यह सब वे स्वयँ करते रहे। इससे सभी आश्रमवासियों को बीमारी की सेवा का पाठ मिला और वे समाज में ऐसे कार्य करने के लिये तैयार हुए।

वे गाँव के लोगों के भी वैद्य बन गये थे। गांधीजी को प्राकृतिक चिकित्सा पर भरोसा था। सूर्यप्रकाश, मिट्टी, पानी की सहायता से बीमारियाँ ठीक होती हैं, यह उनका मूल मंत्र था। वे हमेशा अपने पास तीन साधन रखते थे - अरंडी तेल, सोडा बायकार्ब (खाने का सोडा) तथा एनीमा। इन तीनों के सहारे वे इलाज करते थे। रोज सवेरे गाँव के बीमार लोग आश्रम में आकर अपने रोग का वर्णन गांधीजी के सामने करते थे। वे भी सबसे हँस-बोलकर उपयुक्त उपचार बताते थे। साथ ही फिर से बीमार न होने के लिये जीवन-पद्धति में जरूरी सुधार भी बतलाते थे। गरीब लोगों को सुलभ हों ऐसे उपचार वे बतलाते थे। पानी में रहनेवाले कीटाणुओं से बीमारी न हो, इसलिए कुँए के पानी को जन्तुमुक्त करने के प्रयास हुए। बीच-बीच में कुँए के पानी में दवा डाली जाने लगी। उबालकर पानी पीने का नियम बनाया। मच्छर न हों इसलिए सभी गंदा पानी गड्ढों में डालकर बंद किया जाने लगा। जमीन पर कहीं भी पानी इकट्ठा न हो, रहने की जगह, आँगन, संडास व पेशाब घर - सभी स्वच्छ रखे जावें, ऐसे नियम बनाये गये। फिर भी सैकड़ों वर्षों से जमा गंदगी व अस्वच्छता दूर करने में कुछ वर्ष लगने स्वाभाविक थे।

आश्रम के आसपास जंगल होने से प्रारम्भ में बिच्छू तथा साँप का डर रहता था। साँप को मारें नहीं, पकड़कर दूर ले जाकर छोड़ दें, ऐसी प्रथा बनाई गई। इस प्रकरण के साथ एक चित्र में गांधीजी के मंत्री प्यारेलालजी को बिच्छू काटने से उसका इलाज करने से पूर्व उस स्थान का निरीक्षण कर रहे हैं। प्यारेलालजी की बहन सुशीला नैयर पास में खड़ी होकर वह स्थान दिखा रही हैं। सुशीला बहन मेडिकल की स्नातक हैं। वे प्यारेलालजी के लिये इस आश्रम में आकर रहीं और गांधीजी की मृत्यु तक उनके पास रहीं। उनके आने से गांधीजी का प्राकृतिक ग्रामीण दवाखाना

धीरे-धीरे बदलता गया। उस पर आधुनिक पश्चिमी वैद्यक शास्त्र का असर बढ़ने लगा। आज वही दवाखाना सेवाग्राम आश्रम से थोड़े ही अंतर पर बिड़लाजी के बनाये मेहमान घर में और सुधार करके आधुनिक ऐलोपैथिक पद्धति के दवाखाने के रूप में अपना नाम कमा रहा है।

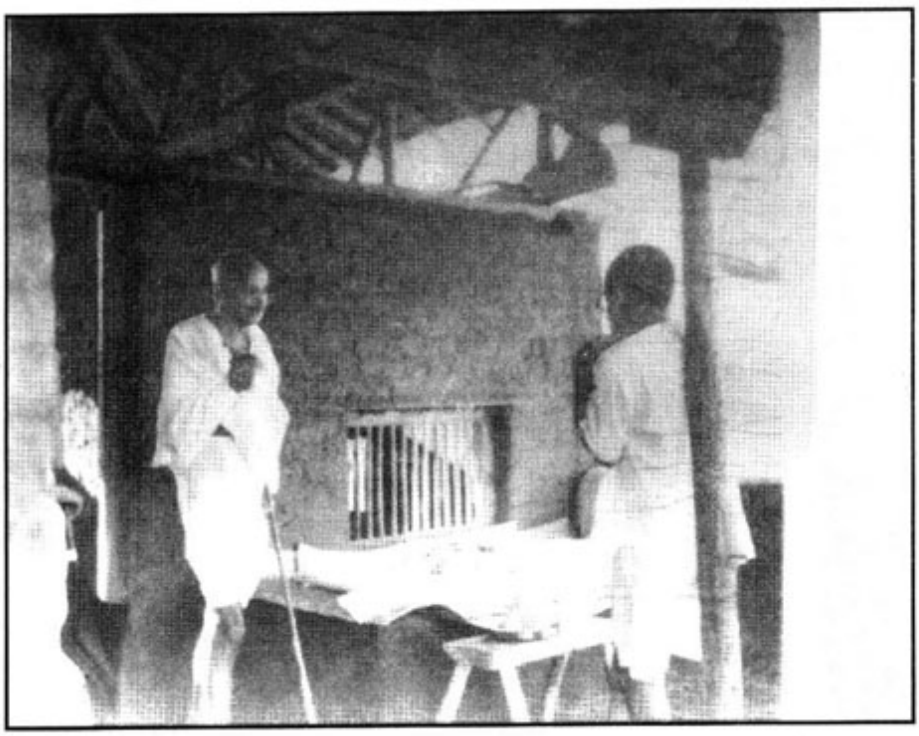

ऊपर के चित्र में पोलैण्ड के भारतानंद की बीमारी में गांधीजी उनकी कुशलक्षेम पूछ रहे हैं।

० ० ०

५. पौधा पनपा

बनें उपवनें पुष्पवाटिका। तपस्यांच्या पर्णकुटिका।
ऐसी पूजा जगन्नायका। यथासांग समर्पावी।।

– दासबोध

(वन, उपवन, पुष्पवाटिका, तपस्वी लोगों की कुटियाँ – ये सब भगवान् की पूजा के साधन हैं। वह पूजा उसे समर्पण करें।)

भारत और वनों का बहुत पहले से नजदीक का सम्बन्ध है। भारत

के प्राचीन काव्य रामायण और महाभारत वनों के वर्णन से भरे पड़े हैं। ग्रामीण अथवा शहरी प्रदेशों की तुलना में वनों का विस्तार बहुत ज्यादा था। चार आश्रमों में से ब्रह्मचर्य व वानप्रस्थ दो आश्रम वन-आधारित थे। भारतवर्ष में सभी ओर पहाड़ फैले हैं। इनके साथ जंगल जुड़े हैं।

परन्तु आधुनिक काल में मनुष्य बस्ती बढ़ने लगी, यंत्रों ने अपने पंख (कारखाने) फैलाये हैं और मशीनों के साथ मनुष्य भी मशीन बनने लगा है। कारखानों के आसपास गाँव व शहर बसने लगे। इससे जंगल नष्ट होने लगे। आबादी के आसपास के जंगलों की लकड़ी जलाने के काम आने लगी। इससे वन कम होने लगे और जमीन पर धूप सीधी गिरने से वह सूखने लगी और उसकी उपजाऊ शक्ति कम होने लगी। सैकड़ों मील का प्रदेश सूखा और बंजर हो गया। राजस्थान और कच्छ में रेगिस्तान फैल गया। वृक्षों का आच्छादन न होने से बारिश भी कम होने लगी।

वृक्षारोपण करते हुए गांधीजी

सन् १९३७ में अनेक प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रिमंडल पदारूढ़ हुए।

उसके बाद हर वर्ष बरसात के प्रारंभ में वन महोत्सव के नाम पर नये वृक्ष लगाये जाने लगे। बापू कुटी के बाहर जो पीपल का भव्य वृक्ष है वह बापू के हाथों लगाया पहला वृक्ष है। वृक्ष न हों तो आश्रम की सुन्दरता कैसे रहेगी। गांधीजी को वृक्षों से बहुत प्रेम था। जिस प्रकार दत्तात्रेय ने अनेक गुरु किये, उसी प्रकार गांधीजी के भी अनेक गुरु थे। तीन बन्दरों की कहानी पहले लिखी गई है। वृक्ष भी उनके गुरु ही थे। अन्यथा आश्रम भजनावली में उनका सिफारिश किया हुआ एकमात्र गीत कैसे स्थान पाता?

वृक्षन से मत ले, मन तू वृक्षन से मत ले।
काटे वाको क्रोध न करहीं, सिंचत न करहिं नेह।। वृक्षन. .

धूप सहत अपने सिर ऊपर, और को छाँह करेत।
जो वाही को पथर चलावे, ताही को फल देत।। वृक्षन . .

धन्य-धन्य ये पर उपकारी, वृथा मनुज की देह।
सूरदास प्रभु कहं लगि बरनौं, हरिजन की मत ले।। वृक्षन . .

गांधीजी की दृष्टि से हर एक वृक्ष में अनासक्त सत्याग्रही का आदर्श प्रत्यक्ष हुआ दिखता है। उपरोक्त भजन में वृक्षों के गुणों का वर्णन अधूरा है। वृक्षों के कारण से विभिन्न प्रकार के पक्षी हमारे पास आते हैं और अपने मधुर कलरव, मधुर संगीत और विभिन्न क्रीड़ाओं से मानव-जीवन को समृद्ध करते हैं। गांधीजी के निर्वाण के बाद जब पीपल वृक्ष विशाल बन गया तो आश्रमवासियों को इसका महत्व समझ में आया। गांधीजी ने खेती की कुछ जमीन पर आश्रम बसाया, फिर भी खेती चालू रही। गाय-बैलों के पालन से खेती समृद्ध होती गई और झोपड़ियों के नीचे जो जमीन गई उस नुकसान की भरपाई वृक्षों ने कर दी।

सेवाग्राम आश्रम और उसके आस-पास वृक्षों की भरपूर वृद्धि हुई है। इसे देखने के लिये आज गांधीजी नहीं रहे। उन्होंने तो मात्र रोप लगाये।। ब्रह्मार्पणब्रम्ह हविः।।

० ० ०

६. कुशल नेता

ऐसा पुरुष धारणेचा। तोचि आधार बहुतांचा।
दास म्हणे रघुनाथाचा। गुण ध्यावा।।

– दासबोध

(विवेकी, आचारवान पुरुष अनेकों का आधार होता है। रामदास कहते हैं, उसका यह गुण अवश्य लें।)

गांधीजी अपना आश्रम बनाकर गाँव में बैठ गये, परन्तु देश की राजनैतिक परिस्थिति उन्हें स्वस्थ नहीं बैठने देती थी। उन्हें बार-बार प्रवास करना पड़ता था। मुंबई के कांग्रेस अधिवेशन के पश्चात् उन्होंने कांग्रेस की सदस्यता छोड़ दी थी, फिर भी उस संस्था ने उन्हें अपना नेता माना था। देश की स्वतंत्रता दिला सकनेवाले निर्भय योद्धा के रूप में देश उनकी तरफ देखता था। गांधीजी के गाँव में जाकर रहने से कांग्रेस के अधिवेशन भी गाँवों में होने लगे। दिसम्बर, १९३६ में महाराष्ट्र के फैजपुर गाँव में कांग्रेस अधिवेशन हुआ। उसमें गांधीजी उपस्थित थे। १९३५ के नये संविधान के अनुसार देश में चुनाव हुए और उसमें पहले सात और बाद में आठ प्रान्तों में कांग्रेस की सरकार बनी। पंजाब, बंगाल व सिंध में मुस्लिम लीग की सरकार बनी। स्वतंत्रता संग्राम के अनेक वीरों को मारपीट का आरोप लगाकर जेलों में बंद कर दिया गया था। उनको छुड़वाने के लिये गांधीजी को प्रयास करने पड़े। हरिजनों के मंदिर प्रवेश के लिये उन्होंने दक्षिण भारत का लम्बा दौरा किया। इससे काम में काफी सफलता मिली। गांधी सेवा संघ के वार्षिक अधिवेशन राष्ट्रीय सप्ताह में (यानी ६-१३ अप्रैल में) देश के किसी गाँव में रचनात्मक कार्यों को केन्द्र में रखकर होते थे। उनमें उपस्थित रहकर गांधीजी कार्यकर्ताओं को मार्गदर्शन करते थे। लगातार देश के राजनैतिक तथा रचनात्मक कामों में लगे रहने से गांधीजी का स्वास्थ्य गिरता गया। देशव्यापी आन्दोलन चलाते समय प्रारंभ में कठिनाइयाँ तो आती ही हैं। विष के अनेक घूँट उन्हें पीने पड़ते थे। इन

सबके परिणामस्वरूप या शरीर-धर्म की मर्यादा के कारण उन्हें उच्च रक्तचाप का रोग लग गया। इस कारण उन्हें वर्धा तथा नन्दी हिल्स (मैसूर राज्य) में जाकर बीच-बीच में जबरन आराम लेना पड़ा।

फैजपुर कांग्रेस के अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू थे। उसके बाद का अधिवेशन फरवरी १९३८ में गुजरात के हरिपुरा गाँव में हुआ। यह अधिवेशन भले गाँव में हुआ हो, लेकिन उसका वैभव शहरों को भी पीछे छोड़नेवाला था। कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा सत्ता संभालने के बाद यह पहला ही अधिवेशन था। इस अधिवेशन के अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस थे।

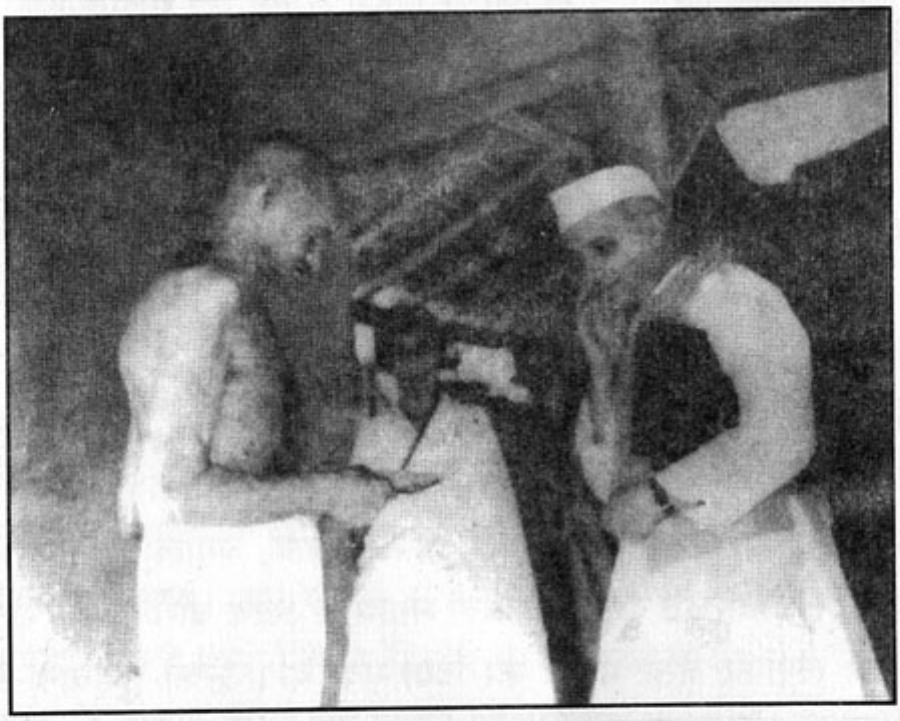

ऊपर का चित्र फरवरी, १९३८ का है। जवाहरलालजी सेवाग्राम आये थे और गांधीजी से सलाह कर रहे थे। पास ही में राजकुमारी अमृत कौर खड़ी हैं। वे पंजाब प्रान्त में कपूरथला राज्य के राजघराने में जन्मी थीं। पिता ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया इससे उनका राजा बनने का हक नहीं रहा। राजकुमारी ने दस वर्ष तक इंग्लैण्ड में रहकर शिक्षा ग्रहण की। वे अखिल भारतीय महिला परिषद की एक प्रमुख नेता थीं। धनवान घर की यह महिला अनेक वर्ष गांधीजी के आश्रम में रहीं और यहाँ के कामों में रम गईं।

० ० ०

७. दिग्विजय का मूल्य

आनंदा आनंद तो। प्रबोधा प्रबोध तो गे बाई।

– ज्ञानदेव

(आनन्द और प्रबोध ये दो उसके प्रमुख चिह्न हैं।)

१९३८ का वर्ष बहुत ही उथल-पुथल भरा रहा। हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन के बाद राजनैतिक बंदियों के प्रश्न पर गांधीजी को ध्यान देना पड़ा। तुरंत ही गांधी सेवा संघ का अधिवेशन उड़ीसा के डेलांग में हुआ। उसमें सप्ताह भर गांधीजी उपस्थित रहे। देश में समय-समय पर जो तात्कालिक समस्याएँ उठती थीं, उनके समाधान के लिये गांधीजी को बहुत मेहनत करनी पड़ती थी। अप्रैल में उन्होंने जिन्ना से मुलाकात की। उसके बाद वे पश्चिमोत्तर प्रान्त में पठानों के बीच गये। कांग्रेस के मंत्रिमंडलों वाले प्रान्तों में भी अनेक दिक्कतें आती रहीं। उन सबका निपटारा भी गांधीजी को ही करना पड़ता था। जुलाई में मध्य प्रान्त में डॉ. खरे प्रकरण खड़ा हुआ। उसे निपटाने में गांधीजी को बहुत कष्ट झेलना पड़ा। इससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। उन्होंने अनिश्चितकालीन मौन ले लिया। फिर भी चीन से खास उनसे मिलने आये प्रोफेसर तावू से उन्हें मिलना ही पड़ा। जापान द्वारा चीन पर हो रहे आक्रमण के बारे में उन्हें गांधीजी की सलाह चाहिये थी। सत्ता हाथ में आने के दुष्परिणाम भी देश के समक्ष आने लगे थे। सब तरफ हिंसा फैलती जा रही थी। जिन हरिजनों के लिये गांधीजी ने अपने प्राणों की आहुति देने की जोखिम उठाई, उन्हीं हरिजनों की ओर से गांधीजी पर गंभीर आरोप लगाये गये। "मंत्रिमंडल में हरिजन मंत्री नहीं लिया गया अतः वह लें, यह हमारी माँग है। यह माँग पूरी होने तक हम आपके आश्रम में सत्याग्रह पर बैठेंगे।" इस तरह की घोषणा करते हुए एक शिष्टमंडल आश्रम में आया। यह अगस्त की घटना है। गांधीजी ने उन्हें खूब समझाया परन्तु वे सुनने को राजी नहीं हुए। तब उनकी माँग के

अनुसार उन्हें कस्तूरबा कुटी में रहने की स्वीकृति गांधीजी ने दी और उनके साथ बहुत प्रेम का व्यवहार किया। अक्तूबर माह में गांधीजी दुबारा पश्चिमोत्तर प्रान्तों का दौरा करने गये। यह प्रवास बहुत ही प्रेम भरा और भव्य हुआ। इस दौरे में अब्दुल गफ्फार खान उर्फ बादशाह खान की लोकप्रियता, संगठन कुशलता व नैतिक शक्ति का दर्शन गांधीजी को हुआ। पठान लोग भी 'मलंगा' बाबा (गांधीजी को उन लोगों का दिया नाम) के दर्शन से प्रसन्न हुए।

अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध भी बढ़ रहे थे। अमरीका के बहिष्कृत नीग्रो, यूरोप में ईसाइयों द्वारा अपमानित तथा जर्मनी में हिटलर के जुल्मों में सताए हुए यहूदी, इसी तरह इंग्लैण्ड अमरीका की मदद से यहूदी लोगों द्वारा फिलीस्तीन से भगा दिये गये अरब आदि दलित व शोषित लोगों द्वारा बार-बार गांधीजी से मार्गदर्शन माँगा गया और गांधीजी ने भी उन्हें उपयुक्त सलाह दी। वे कहते थे कि अपना आत्मगौरव बढ़ानेवाला प्रतिपक्षी का हृदय परिवर्तन करनेवाला अमोघ अस्त्र अहिंसामूलक सत्याग्रह ही है। इसी की वे सिफारिश करते थे। अपने मौलिक विचार वे लोगों को समझाते थे।

१९३८ के अंतिम दिनों में अनेक ईसाई नेता गांधीजी से मिलने आये। भारत में ईसाई मिशनरियों की अनेक संस्थाएँ थीं। खासकर गरीब अस्पृश्य व पिछले वर्ग के लोगों को ईसाई बनाने का काम विशिष्ट ढंग से किया जाता था। गांधीजी को यह पसंद नहीं था। इसलिये गांधीजी के विचार समझने की दृष्टि से अनेक मिशनरी लोग उनसे मिलने आये। गांधीजी ने उनसे सविस्तार चर्चा की। अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति के बारे में भी अपने विचार स्पष्ट किये। यूरोप के शांतिवादियों की और अपनी भूमिका का भेद उन्होंने स्पष्ट करके बतलाया। इसके बाद जापानी लोकसभा के सदस्य श्री ताकाओका मिलने आये। जापान में 'एशियाई लोगों के लिये एशिया' इस तरह का कहनेवाला एक दल बना था। उसके लिये वे लोग गांधीजी का संदेश मानने लगे। गांधीजी ने इसे कूपमण्डूक का सिद्धान्त नाम दिया।

इसी माह के अन्त में सेवाग्राम में मिलनेवालों की बहुत भीड़ हो गई। गांधीजी कितने ही थके हुए हों, अथवा काम का कितना ही बोझ क्यों न हो उनकी प्रसन्नता कभी लुप्त नहीं होती थी।

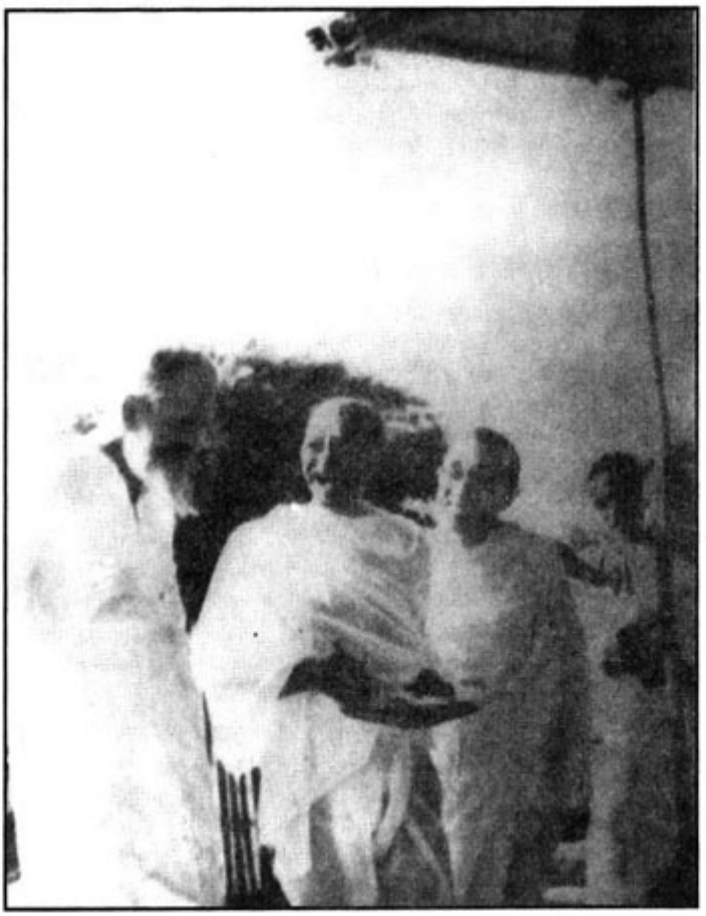

ऊपर का चित्र उनके अनेक वर्षों के मित्र दीनबन्धु एन्ड्रूज जब १९३८ दिसम्बर में सेवाग्राम आए, तब का है। एंड्रूज जवानी में ईसाई पादरी थे। परन्तु उनकी शुद्ध वृत्ति को ईसाई मिशनरियों के नीति-नियम पसंद नहीं आए। इसलिए उन्होंने वह संगठन ही छोड़ दिया और वे शांति निकेतन में जाकर रहने लगे। गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में जब सत्याग्रह आंदोलन चलाया तो एन्ड्रूज अपने मित्र पियरसन के साथ वहाँ मदद के लिए गये थे। तब से उनका गांधीजी के साथ का स्नेह संबंध अन्त तक कायम रहा। १९२२ में जब गांधीजी ने स्वतंत्रता के लिये संग्राम शुरू करने का तय किया तो, उनका पत्र लेकर एंड्रूज ही भारत के वायसराय के पास गये थे। एंड्रूज का मन एक बालक के समान निष्पाप और सरल था। कभी-कभी उनका मतभेद गांधीजी से हुआ फिर भी उनकी मित्रता

में कभी अंतर नहीं आया। फोटो में गांधीजी उनसे हास्य-विनोद करते दिखाई देते हैं।

बहुतांचे समाधान राखावें। बहुतांस मानेल तें बोलावें।।

(सबका समाधान करो तथा सबको जँचे वही बोलो।)

समर्थ गुरु की यह कला गांधीजी को सध गई थी। रूखी-सूखी राजनैतिक चर्चाओं में भी वे अपने सहृदय विनोद से रस निर्माण कर देते थे। क्रोधवालों को शांत कर देते थे। लोगों के हृदय आंदोलित कर देते थे। दुःखी लोगों के मन पर अपनी मीठी बातों से मरहम लगाते थे।

ऊपर के चित्र में अमेरिका की यंग वूमेन्स क्रिश्चन एसोसिएशन की नीग्रो शाखा की मंत्री कु. सी. स्मिथ के साथ गांधीजी हाथ मिला रहे हैं।

धन्य ते संसारीं। दयावंत जे अंतरीं।।
येथें उपकारासाठीं। आले घर ज्यां वैकुंठीं।।
लटिकें वचन । नाहीं, देहीं उदासीन।।
मधुरवाणी ओठीं। तुका म्हणे वाव पोटीं।।

(जिनके हृदय में दया रहती है, वे जन्म पाकर धन्य हुए। उनका निवास बैकुंठ में है, लेकिन लोगों पर दया करने के लिये वे संसार में

आये हैं। वे कभी झूठ नहीं बोलते। अपनी देह के बारे में वे उदासीन हैं। वे हमेशा मीठे वचन बोलते हैं और लोगों को अपने हृदय में समा लेते हैं।)

० ० ०

८. धर्म का साक्षात्कार

प्रभो शरण आलियावरि न व्हा कधीं वाकडे।
म्हणोनि इतुकेंचि हें स्वहितकृत्य जीवाकडे।।

– केकावली

(प्रभु की शरण आने पर कभी श्रद्धा मत खोओ। उसकी शरण जाना ही स्वहित का साधन हमारे हाथ में है।)

सेवाग्राम आश्रम से बाहर देश में अपने-अपने स्थान पर काम करनेवाले गांधीजी के हजारों कार्यकर्ता थे। उनमें से एक परचुरे शास्त्री थे, वे संस्कृत के बड़े विद्वान थे। वे संस्कृत में बोलते थे। ऐसे विद्वान कार्यकर्ता को कुष्ठ रोग हो गया।

यरवडा जेल में वे महादेवभाई के साथ ही थे, वहीं पता लगा कि परचुरे शास्त्री को कुष्ठ रोग हुआ है। यह १९३० के सत्याग्रह के दिनों की घटना है। जेल से छूटने पर परचुरे शास्त्री साबरमती आश्रम में भर्ती हो गये। रोग का प्रारंभ काल था, अतः गांधीजी की सम्मति से वहाँ उन्हें आश्रय दिया गया, उनके लिये स्वतंत्र व्यवस्था की गई। वहाँ रहकर वे अध्ययन, अध्यापन, वाचन व सूत्रयज्ञ करते थे। १९३३ में साबरमती आश्रम विसर्जित होने पर वे पुनः महाराष्ट्र में आये। परन्तु दिनोंदिन उनका रोग बढ़ता जा रहा था। कोई भी उन्हें अपने पास रखने की हिम्मत नहीं कर पाता था। अपने स्वजनों तथा स्वजाति के लोगों का बहिष्कार उनको सहन करना पड़ा। इस सब परिस्थिति से अत्यन्त दुःखी होकर उन्होंने आमरण उपवास प्रारंभ किया। परन्तु अन्त तक उस पर टिके रहना उनसे

सधा नहीं। अब क्या करना। समाज से उपेक्षित व दुर्लक्षित परचुरे शास्त्रीजी इधर-उधर भटक रहे थे। तभी उन्होंने सुना कि गांधीजी ने सेवाग्राम में आश्रम खोला है। परचुरे शास्त्री ने मन ही मन गांधीजी का आश्रय लेने का सोचा।

आडलिया जना होसी साहकारी। आंधळिया करीं काठी तूंचि।
आडले गांजले पडिले संसारीं। त्यांचा तूं कैवारी नारायणा।।

(मुश्किल में पड़े लोगों के तुम सहायक हो। अंधों की लकड़ी हो। संसार में जो दुःखी-पीड़ित हैं, उनके रखवाले तुम ही हो।)

सताये हुए तथा दुःखी जनों का तारणहार उन्हें एक ही दीखा। परचुरे शीघ्र ही सेवाग्राम आ गये। वे आ तो गये, पर आश्रम में प्रवेश करने की उनकी हिम्मत नहीं हुई। अपना विद्रूप चेहरा लेकर किस तरह लोगों के समक्ष जायें, यह उनकी दुविधा थी। परन्तु आश्रम के दरवाजे के पास उनकी गांधीजी से भेंट हो गई। जमीन पर बैठे-बैठे ही उन्होंने अपने नेता का अभिवादन किया। वे बोले, "मुझे आपके सान्निध्य में मरना है। मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं वृक्ष के नीचे रह लूंगा। रोज दो रोटी मिल जाय तो बस। और कुछ नहीं चाहिये। जब तक जीवित हूँ तब तक आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ, सिर्फ यही मेरी इच्छा है।" गांधीजी विचार में पड़ गये। आश्रम में तो सब तरह के लोग आकर रहने लगे थे। औरतें, बच्चे व पुरुष। इस महारोगी को आश्रम में रखा तो इन लोगों के स्वास्थ्य को कोई खतरा तो नहीं होगा? इसलिए प्रथम भेंट में उन्होंने शास्त्रीजी को आश्रम में रहने की सम्मति नहीं दी। शास्त्री जी वहीं झाड़ के नीचे रातभर पड़े रहे।

रात को गांधीजी के मन में विचार आने लगे। "मेरे बुलाये बिना यह रोगी यहाँ आया है। यह मेरा पुराना कार्यकर्ता है। इसे रोग हो गया, इसलिए मैं इसे कैसे छोड़ दूँ। मेरे रिश्तेदार को क्षय रोग हो गया तो भी मैंने उसे आश्रम में रखा या नहीं। खुद बा उसकी सेवा करती हैं। बालजीभाई देसाई बीमार हैं, उन्हें भी आश्रम में रखा है। फिर परचुरे को

कैसे मना करूँ? मेरा धर्म क्या है? परचुरे को आश्रम में रखना ही चाहिए।''

जैसे ही उनके मन में अपने कर्तव्य का निश्चय हुआ उन्होंने दूसरे ही दिन परचुरे शास्त्री से मिलकर उन्हें शरण देने का निश्चय बताया। अपनी कुटी के पश्चिम में एक मण्डप बनाने को उन्होंने कहा और उसमें परचुरेजी को रखा। धीरे-धीरे मण्डप का सुधार होकर कुटिया बनाई व शास्त्रीजी वहाँ आराम से रहने लगे।

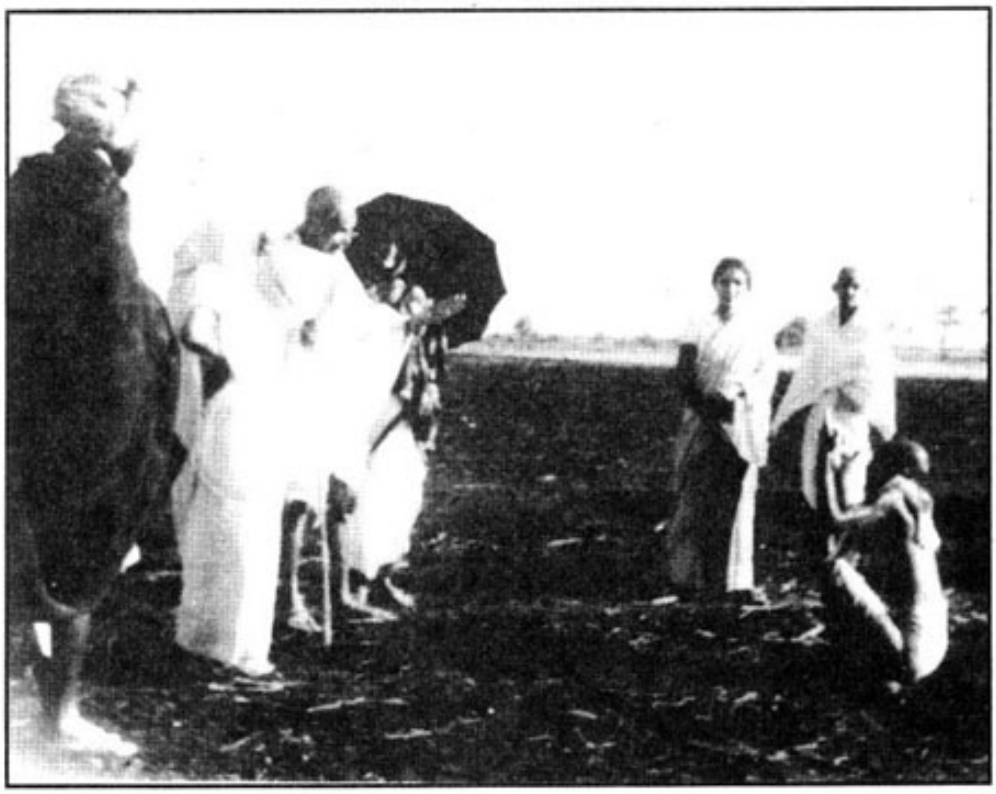

ऊपर के चित्र में गांधीजी व शास्त्री की सड़क पर हुई प्रथम भेंट का दृश्य दिखता है।

० ० ०

९. करुण और भव्य

ज्यासि आपंगिता नाहीं। त्यासि धरी जो हृदयीं।।
तोचि साधु ओळखावा। देव तेथेंचि जाणावा।।

– तुकाराम

(जिसका कोई नहीं है, उन्हें जो अपनाता है, वही सच्चा साधु है। ईश्वर वहीं वास करता है ऐसा जानो।)

गांधीजी ने परचुरे शास्त्री के लिये जो मण्डप बनाया वह आश्रम के अन्दर ही था और गाँव की बस्ती की सड़क से लगकर था। सड़क से लोग आते जाते थे। शास्त्रीजी का उठना, बैठना, खाना-पीना, शौचादि सभी क्रियाएँ वहीं होती थीं। आश्रम का एक कार्यकर्ता उनकी मदद में रहता था। कुछ विचारशील लोगों को इस व्यवस्था में खतरा दिखा। उन लोगों ने गांधीजी को सुझाव दिया कि गाँव के इतने नजदीक कुष्ठ रोगी को रखना उचित नहीं होगा। उसकी व्यवस्था बस्ती से दूर एकान्त जगह पर की जाये। गांधीजी को सुझाव पसंद आया। उन्होंने अपनी कुटी के पूरब की ओर नजदीक ही कंपाउण्ड के पास एक कुटी बँधवाई और शास्त्रीजी को उसमें रखा। वे रोज उनका हालचाल पूछने जाते थे। उनके खाने-पीने व उपचार आदि की सूचना देते थे। कुछ समय के बाद शास्त्रीजी का शरीर और अधिक रोगग्रस्त हो गया। अंगों पर फोड़े होकर उनसे मवाद बहने लगा। ऐसी अवस्था में उनको खुद को अपने शरीर की अवस्था सहन नहीं हो रही थी। इसलिये उन्होंने गांधीजी से पूछा कि वे मरणपर्यंत उपवास करना चाहते हैं। गांधीजी ने इजाजत दी। परन्तु साथ के कार्यकर्ता को सूचना दी कि अगर शास्त्रीजी कभी पुनः खाने की इच्छा करें तो उन्हें खाना दिया जाये। शास्त्रीजी का उपवास सात दिन चला। महादेवभाई ने गांधीजी को बतलाया कि शास्त्रीजी का निश्चय कमजोर हो रहा है। गांधीजी ने शास्त्रीजी को पुनः अन्न देना आरम्भ कर दिया। कभी-कभी गांधीजी खुद शास्त्रीजी की मरहमपट्टी करने लगे। भोजन के नियम भी बनाये। संयमित उपवास, योग्य आहार और महात्माजी की

सेवा-सुश्रूषा तीनों कारणों से शास्त्रीजी की तबियत धीरे-धीरे सुधरने लगी। उनके शरीर के घाव भरने लगे। शरीर पुनः सतेज होने लगा।

गांधीजी के इस धार्मिक काम का परिणाम हुआ कि देश में कुष्ठरोग के बारे में जो घृणा फैली हुई थी वह कम होने लगी। रोग को छिपाने की वृत्ति कम होने लगी। देश में कुष्ठ रोगियों की सेवा ईसाई मिशनरी लोग दवाखाना बनाकर करते थे, अब हिन्दुस्तान के समाज में भी कुष्ठसेवक होने लगे और कुष्ठधाम बनने लगे। पहला दवाखाना वर्धा से क़ुछ ही दूरी पर मनोहर दिवाण ने स्थापित किया। आज भी वह दत्तपुर कुष्ठधाम के नाम से प्रसिद्ध है। उसका काफी विस्तार हुआ है। दो वर्ष तक सेवा करने के बाद गांधीजी ने शास्त्रीजी को दत्तपुर कुष्ठधाम में भेज दिया। गांधीजी प्रवास में ज्यादा जाने लगे थे और दत्तपुर में अच्छी व्यवस्था खड़ी हो रही थी, अतः शास्त्रीजी वहाँ अपने अंतिम दिनों में रहे।

गांधीजी ने अपने रचनात्मक कामों की सूची में भगवान की सेवा का यह कार्यक्रम भी शामिल कर लिया। इसका खूब प्रचार भी किया।

विभिन्न प्रान्तीय सरकारों ने अपने क्षेत्र में कुष्ठरोग अस्पताल खोले और इन सब कामों का संयोजन करनेवाली एक अखिल भारतीय समिति

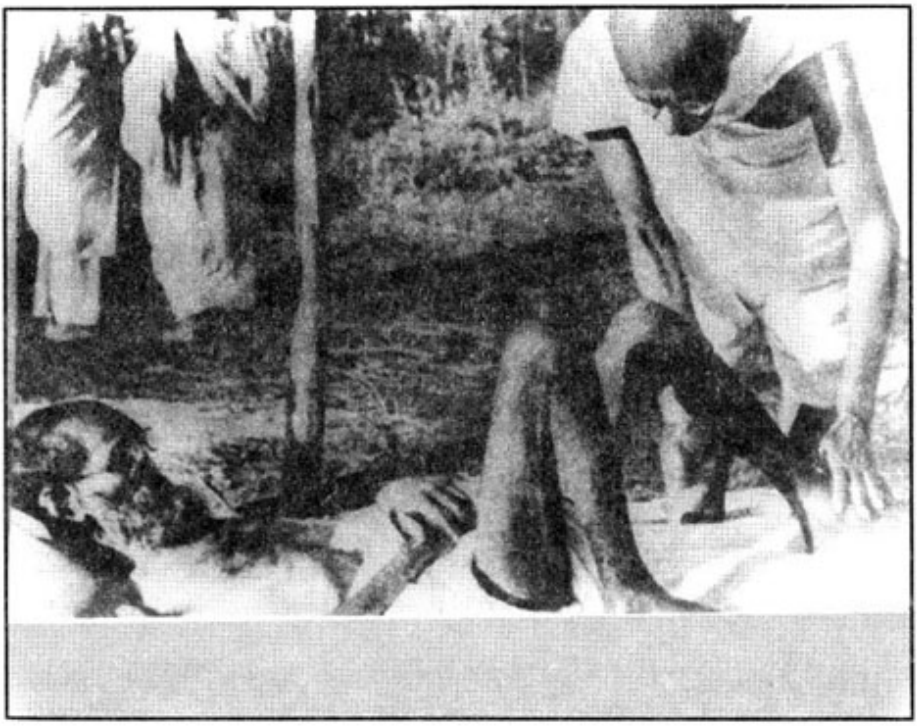

भी बनी। आज देश में सरकारी तथा स्वयँसेवी मिलाकर करीब ३०० से ४०० दवाखाने इस निमित्त से कार्यरत हैं।

पिछले के चित्र में गांधीजी शास्त्रीजी की सेवा करते हुए दिखाई दे रहे हैं। ० ० ०

१०. अध्ययन का मर्म

जो एकान्तासी तत्पर। आधीं करी पाठांतर।।
अथवा शोधी अर्थांतर। ग्रंथगर्भींचें।।

– दासबोध

(साधु वह जो एकान्त के लिए तत्पर रहता है, जो पहले ग्रंथ कण्ठस्थ कर लेता है और /अथवा उनके अर्थ की खोज करता है।)

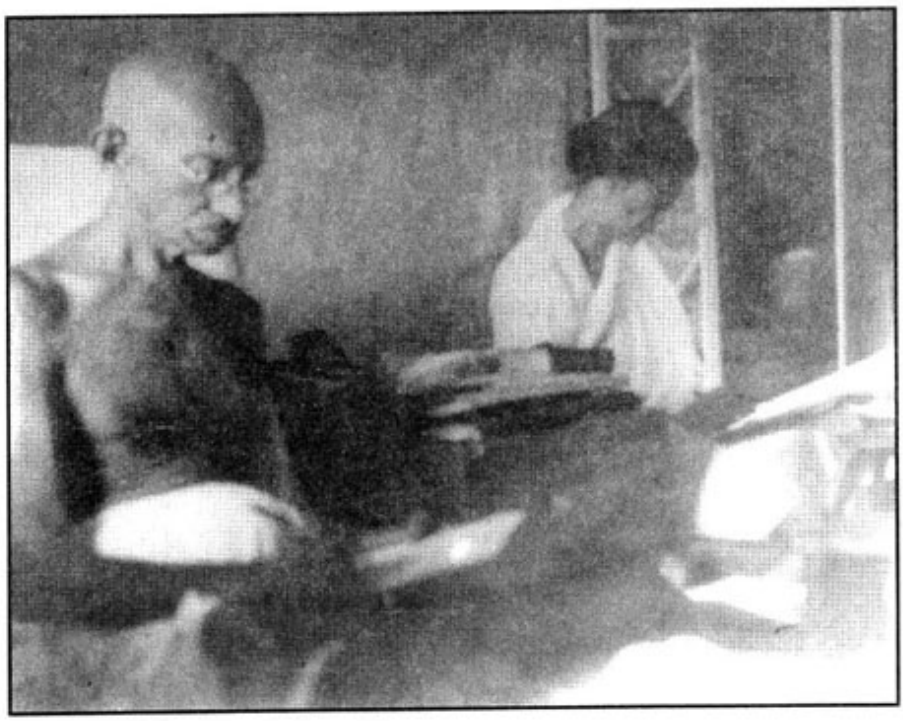

ऊपर के चित्र में गांधीजी अपनी कुटी में बैठकर लेखन कार्य कर रहे हैं। उनके पास ही राजकुमारी अमृत कौर उन्हें मदद कर रही हैं। गांधीजी का पत्र-व्यवहार बढ़ता जाता था। अनेक देशों से उनके पास पत्र आते थे। उन सबको पढ़कर उत्तर देना उनके अकेले की शक्ति से परे

था। इसलिये उन्होंने मंत्री लोगों की मदद ली थी। इस मंत्रिपरिषद के मुख्य महादेव देसाई थे। उनकी मदद में प्यारेलालजी व राजकुमारी अमृतकौर थीं। जरूरत पड़ने पर और भी लोग मदद के लिये जाते थे। किसी छोटे बच्चे ने भी पत्र भेजा, तो उसे भी उत्तर देने का गांधीजी का रिवाज था। आवश्यकतानुसार पत्रों का सविस्तार या संक्षिप्त उत्तर देने में गांधीजी सिद्धहस्त थे।

राजकुमारी का पूर्व जीवन एक धनी परिवार में बीता था। गोखले जी का राजकुमारी से परिचय था, उन्होंने ही राजकुमारी का गांधीजी से परिचय करवा दिया। प्रस्तुत लेखिका को उन्होंने यह बात बतलाई थी। पहचान हो जाने के बाद गांधीजी उन्हें काम बताने लगे और इससे उनकी रुचि बढ़ती गई। आखिर वे सेवाग्राम आकर रहीं। उनके रहने के लिये कोई स्वतंत्र कुटी नहीं थी। आश्रम में जो भोजन बनता था वही वे खाती थीं। उनका शरीर नाजुक था। फिर भी उन्होंने खादी पहनना, सूत कातना, सामूहिक प्रार्थना में नियमित भाग लेना तथा गांधीजी को उनके काम में मदद करना जारी रखा। इस प्रकार उन्होंने अपनी साधना प्रारम्भ की। शाम की प्रार्थना में तुलसी रामायण गाई जाती थी। उसमें वे भाग लेती थीं। बालजीभाई देसाई बीमार थे, उन्हें गांधीजी ने आश्रम में उपचार हेतु रखा था। उनकी रोज मालिश करने को गांधीजी ने राजकुमारी से कहा। वे तुरंत इस काम में लग गईं। अपनी प्रेमशक्ति के बल पर गांधीजी ने विभिन्न योग्यता वाले लोग अपने पास आकर्षित कर लिये थे। उनको वे सँभालते थे और उनका विकास करते थे।

सत्य के साक्षात्कार के लिये गांधीजी ने जीवनभर तीव्र साधना की। परन्तु इसके लिये वे जंगल में जाकर नहीं रहे। लोगों के बीच रहकर भी एकान्त अनुभव करने की शक्ति उनमें थी। वे खूब पढ़ते थे। विभिन्न प्रकार की पुस्तकें वे पढ़ते थे। 'अन्न' के ऊपर जितनी पुस्तकें उन्होंने पढ़ी उतनी किसी ने नहीं पढ़ी होगी। ऐसा एक बार उन्होंने इस लेखिका से कहा था। उनकी एकाग्रता विलक्षण थी। बड़े-बड़े वैचारिक ग्रंथ वे सरलता से व तेज गति से पढ़ डालते थे। इस सम्बन्ध में महादेव भाई भी सहमत हैं। उन्हें जो

लोग पढ़कर सुनाते थे, उन्हें वे कहते थे कि जल्दी- जल्दी पढ़ो। इस तरह पढ़ने या सुनने पर भी लिखी बातें उन्हें सविस्तार स्मरण रहती थीं। जो वे पढ़ते थे, उस पर स्वतंत्र विचार कर अपना नया ही अर्थ वे करते थे। बड़े-बड़े विद्वान भी उनके अर्थ का प्रतिरोध नहीं कर सकते थे। विरोधी के या सरकारी विज्ञप्तियों में से भी अपने अनुकूल बातें वे ताड़ लेते थे। उनके तर्क बेजोड़ रहते थे। मन-वचन-काया से जीवन भर सत्य की ही खोज करते रहने से उनकी वाणी में तेजस्विता प्रस्फुटित होती रहती थी।

० ० ०

११. ग्रीष्म ऋतु के शीतोपचार

तापत्रयें माझी तापली हे काया। शीतळ व्हावया पाय तुझे।।

– तुकाराम

(तीन प्रकार के ताप से मेरी काया तप रही है। तुम्हारे पाँव ही मुझे शीतलता प्रदान कर सकते हैं।)

पिछले पृष्ठ का चित्र १९४० की गर्मी के दिनों का है। वर्धा व आसपास का वायुमंण्डल गर्म हवाओं के लिये प्रसिद्ध है। गांधीजी ७० वर्ष के हो गये थे। १९३५ से गांधीजी वर्धा रहने आ गये थे। १९३६ अप्रैल में वे सेवाग्राम रहने आ गये। गर्मी के दिनों में यहाँ काफी गर्मी होती है। सबेरे ८ बजे से शाम ५ बजे तक यहाँ गर्मी से तकलीफ होती रहती है। इसलिए बहनें सवेरे आठ बजे से पूर्व ही अपना खाना बनाकर चूल्हा बुझा देती हैं। रात का खाना सूर्यास्त के बाद ही बनाती हैं। छोटे बच्चे पानी से भरी बाल्टियों में खेलने को उद्यत रहते हैं। इसके सिवाय गर्मी में अधिकतर कुँए सूख जाते हैं, यह दूसरी मुसीबत। गाँव के जीवन से समरस होने का प्रयास गांधीजी करते रहते थे। उनकी उम्र ज्यादा थी, शरीर कमजोर, उच्च रक्तचाप भी उनको सता रहा था, फिर भी सेवाग्राम की गर्मी को सहन करने का प्रयास कर रहे थे। अपनी कुटी में बैठकर ही वे मिलनेवालों से बात करते थे या पत्र व लेख लिखते थे, फिर भी कहीं हवा बदल के लिये जाते नहीं थे। जंगली पत्तों व घास का एक परदा बनाया गया था। उसे उनकी बैठक के पास वाले दरवाजे पर लगा दिया गया था। उस पर बीच-बीच में पानी छिड़क दिया जाता था। उनके सिर के ऊपर पुराने ढंग का एक पंखा लगाया गया था। उसकी डोरी को एक कार्यकर्ता धीरे-धीरे खींचता था, जिससे कुछ हवा मिलती रहती थी। इन ग्रामीण उपायों के अलावा एक रामबाण उपाय वे काम में लाते थे। गांधीजी की मिट्टी पर अपार श्रद्धा थी, प्रेम भी था। विभिन्न बीमारियों पर वे मिट्टी का लेप लगाने की सिफारिश करते थे। मिट्टी को गीली करके खादी के पतले कपड़े पर उसे फैलाकर उसकी तह करके वे उसे दोपहर के आराम के समय अपने पेट पर रखते थे। गर्मी में घूमते समय अपनी बैठने की छोटी गद्दी वे अपने सिर पर रख लेते थे। इन उपायों से ठंडक मिलती है ऐसा उनका अनुभव था। उनकी राय में गाँव के लोगों के लिये ये सस्ते और सरल उपाय थे। वास्तव में गांधीजी भूमाता के सच्चे पुत्र थे।

समुद्रवसने ! देवि ! पर्वतस्तनमंडले।
विष्णुपत्नि ! नमस्तुभ्यं; पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

माता के समान जो भूमि हमें अपनी देह पर धारण करती है तथा अन्न-वस्त्र देकर हमारा पोषण करती है, उसके ऊपर हम अपने पाँव रखते हैं, यह उसे शायद अनुचित लगता हो। इसलिये उसे अपने सिर पर और पेट पर रखकर हम उस अनादर की भावना से कुछ मुक्त हो सकते हैं, ऐसा भी गांधीजी का विचार रहा हो।

१९३९ में यूरोप में विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया। जर्मनी का हिटलर एक के बाद एक देश जीतता जा रहा था। मित्र राष्ट्र हारते जाने के कारण हताश हो गये थे। इस युद्ध का भारत पर भी परिणाम होना लाजिमी था। कांग्रेस में इस बारे में मतभेद हो गये थे। गांधीजी की अहिंसा पर अटूट श्रद्धा थी। परन्तु दूसरे नेता लोग उनकी भूमिका पर जाने में हिचकिचाते थे। उनका मत था कि अगर हिटलर भारत पर आक्रमण करता है तो उसका सशस्त्र मुकाबला करना चाहिए। अँग्रेज़ सरकार भारतवासियों से सहयोग की मांग कर रही थी और कुछ नेता लोग सशर्त सहयोग देने का भी सोचने लगे थे। आम जनता काफी निराश व दुःखी थी। आर्थिक क्षेत्र में युद्ध का परिणाम विशेष होने लगा था। सरकारी दमन भी शुरू था ही। इसी वर्ष गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारंभ किया। श्री विनोबा भावे पहले सत्याग्रही चुने गये। मनुष्य को भविष्य का पता नहीं होता। भूतकाल से शिक्षा लेकर भविष्य का विचार करके वर्तमान काल में कृति करनी होती है। देश में अनेक मत-मतांतर थे। देशी राज्यों का रुख भी राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिये अनुकूल नहीं था। इस तरह संसार में व्याप्त विपत्तिकाल में, जब चारों ओर हिंसा का ताण्डव हो रहा हो ऐसे समय में पराधीन व पस्तहिम्मत देश का नेतृत्व करना टेढ़ी खीर था। गर्मी की उष्णता की बजाय परिस्थिति की गर्मी उन्हें ज्यादा लग रही थी। फिर भी गांधीजी अपने ध्येय व कार्यक्रमों से यत्किंचित भी डिगे नहीं। इसका मुख्य कारण था कि उनका संपूर्ण जीवन सत्यनारायण की सेवा में समर्पित था।

० ० ०

१२. संघशक्ति से सेवा योग

एकमेकां साह्य करूं। अवघे धरूं सुपंथ।।

–तुकाराम

(एक दूसरे की सहायता करें तथा सभी सत्पथ पर चलें।)

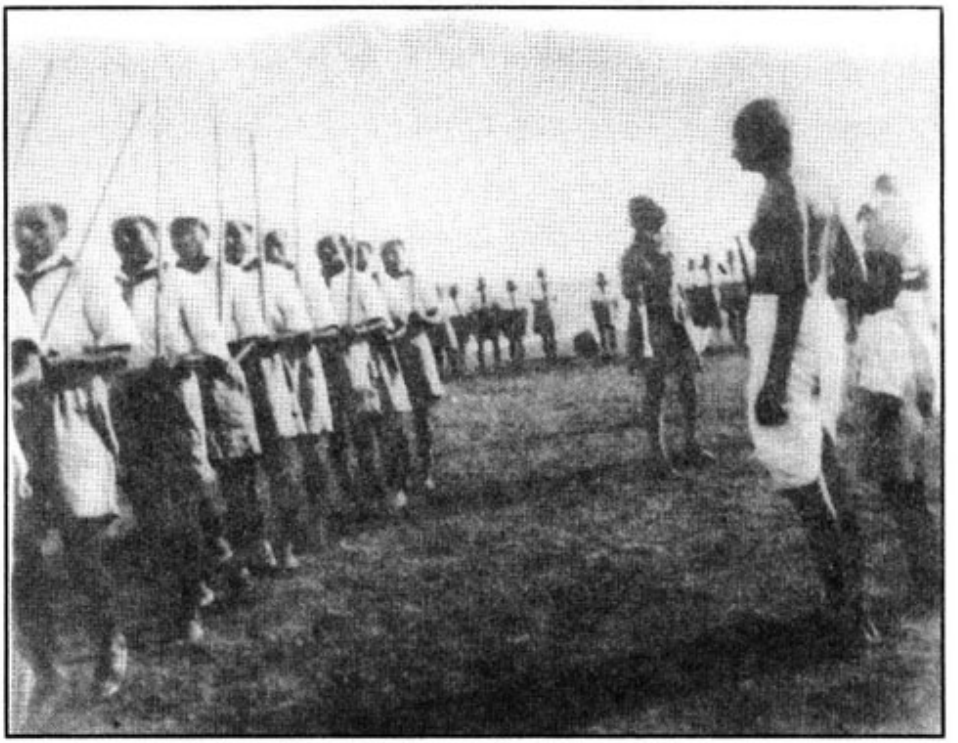

१९३८ दिसम्बर में हिन्दुस्तान स्काउट्स एसोसिएशन के स्वयँसेवक सेवाग्राम आये थे। उन्होंने गांधीजी के समक्ष वर्ग संचालन करके दिखलाया। गांधीजी को सभी प्रकार के रचनात्मक कार्यों के प्रति रुचि थी। उन्हें नवयुवकों से भारी आशा थीं। यद्यपि गांधीजी अहिंसा के पुजारी थे, फिर भी अनुशासन, क्रमबद्धता आदि गुणों का महत्व वे खूब समझते थे। सेवाग्राम गाँव की सफाई करने जानेवाली टुकड़ी के लिये उनकी सूचना थी कि सभी लोग एक के पीछे एक कतार से जावें। चलते समय पाँव क्रमबद्ध होने चाहिये। साथ में ले जाने के सफाई के साधन (झाड़ू, टोकरी आदि) जिस तरह सैनिक लोग अपनी बंदूकें बगल में उठाकर चलते हैं, उसी तरह लेकर जावें। अपने सेवा–साधनों का हमें

अभिमान होना चाहिये। इन्हें तुच्छ नहीं गिनना चाहिये, ऐसा वे कहते थे। सत्य प्राप्ति का साधन अहिंसा है ऐसा मान लेने पर अपना पूरा व्यवहार भी अहिंसा आधारित होना चाहिये और इसी दृष्टि से गांधीजी हमेशा प्रयत्नशील रहते थे। कहने का आशय यह कि सेवा का कोई भी कार्य छोटा या नीचा नहीं है। व्यक्तिगत स्वच्छता हो या सामूहिक सफाई - यह सब समाज से अनेक बीमारियों को हटाने के अभिक्रम हैं। इसलिये जिस प्रकार शत्रु पर हमला करने के लिये सैनिक अपनी सारी शक्ति एकत्रित करता है, उसी प्रकार सफाई स्वयँसेवकों को भी अपनी सर्व शक्ति इस काम में लगानी चाहिये।

रोग निर्मूलन का काम शत्रु का विरोध या नाश करने वाले सैनिकों की कार्यवाही की अपेक्षा किसी भी प्रकार से कम नहीं है, यह सभी को समझना चाहिये। देश का नाश करने वाले विविध प्रकार के रोग, आलस्य, दरिद्रता ये सभी देश के शत्रु ही हैं। इन्हें दूर भगा देने का काम बहुत ही महत्व का है. इसके लिये हमें समूह शक्ति से काम प्रारम्भ करना चाहिये। इसके लिये राजनैतिक व सामाजिक मतभेद भूलकर सभी को मिलकर काम में लगना चाहिये, इस दृष्टि से वे सतत प्रयत्नशील रहते थे।

० ० ०

१३. करुणा का काव्य

अर्भकाचे साठीं । पंतें हातीं धरिली पाटी ।।
तैसें संत जगीं । क्रिया करून दाविती अंगीं ।।

– तुकाराम

(जैसे बच्चे को सिखाने के लिये शिक्षक स्वयँ हाथ में पाटी स्लेट लेते हैं, उसी तरह संत लोग संसार में प्रत्यक्ष क्रिया करके मार्गदर्शन करते हैं।)

सेवाग्राम आश्रम में गौशाला थी। बलवंत सिंह जैसा एकनिष्ठ गोभक्त सेवक गौशाला को मिला था। प्रारम्भ में आश्रम के फाटक के पास ही गौशाला थी। बापू कुटी से उसके दर्शन होते थे। प्रतिदिन घूमने जाते समय गाय-बछड़ों की सहज भेंट होती थी। गांधीजी मूल में हिन्दू थे। गायों के लिये उनके मन में अपार प्रेम था, परन्तु वह सिर्फ काव्यात्मक नहीं था। वे मानते थे कि भारत का आधार गाँव हैं। गाँव की संस्कृति खेती के आसपास विकसित हुई है और खेती का आधार बैल है। इसलिये गाय जैसे बैलों की माता है वैसे ही वह भारत की भी माता है। उनका आग्रह था कि गाय की सेवा वैज्ञानिक ढंग से व एकनिष्ठा से होनी चाहिये। भैंस ने गाय को मार दिया है, अतः भैंस को मत पालो। गो पालन करो। अगर ठीक ढंग से उसकी सेवा करेंगे तो उसकी किस्म सुधरेगी और देश में प्रचुर मात्रा में गोधन होगा। इससे खेती को भी फायदा होगा। इसलिए साबरमती सत्याग्रह आश्रम में उन्होंने गौशाला प्रारम्भ की थी। सेवाग्राम आश्रम में भी गौशाला थी ही। गौशाला विकास के लिये उन्होंने कभी पैसे की परवाह नहीं की। कोई गाय ब्याई तो बलवंत सिंह नये जन्म लिये बछड़े का दर्शन गांधीजी को कराते थे। गांधीजी प्रसन्न होकर कहते थे, "अरे, तुम्हारा परिवार तो बढ़ता जा रहा है।"

एक बार आदि निवास के बरामदे में बैठकर गांधीजी कुछ लिख रहे थे। उसी समय बलवंत सिंह एक नया जन्म लिया बछड़ा बापू को दिखाने लाये। वह उनके हाथ से फिसल गया और सीधा गांधीजी की बैठने की गद्दी पर चढ़ गया। गांधीजी उसे सहलाने लगे। बछड़े ने पेशाब

शुरू कर दी। बलवंत सिंह उसे उठाने लगे तो गांधीजी ने उन्हें रोका। बोले, "रहने दो, पेशाब करने दो उसे।" बछड़ा पेशाब करता रहा, गांधीजी हँसते रहे।

गाय-बकरी को या उनके बच्चों को कोई बीमारी हो जाय और बलवंत सिंह को उसका कोई इलाज न सूझे तो गांधीजी स्वयँ वहाँ पहुँचकर आवश्यक उपाय सुझाते थे। मनुष्य जितना ही प्रेम वे इन पालतू जानवरों पर करते थे। कुछ दिन पहले यंग इंडिया में गाय पर एक लेख में बापू ने लिखा था - (Cow is a poem in pity) "गाय करुणा का काव्य है।" अपने अंतिम समय तक उनकी गाय के बारे में ऐसी ही भावना रही। सभी देशवासियों को अपने समान ही गाय की सेवा करनी चाहिये ऐसा उनका प्रयास रहा। १९२४ में जेल से छूटने पर उन्होंने जो रचनात्मक संस्थाएँ कायम की उनमें से एक अखिल भारतीय गो सेवा संघ भी थी। वह संघ कालान्तर में बंद हो गया, अतः १९४१ में उन्होंने जमनालाल बजाज को गो सेवा करने को प्रवृत्त किया। अतः गो-सेवा संघ पुनः प्रारम्भ हुआ। इतना होने पर भी आज भी गो सेवा का काम गति नहीं पकड़ पाया है।

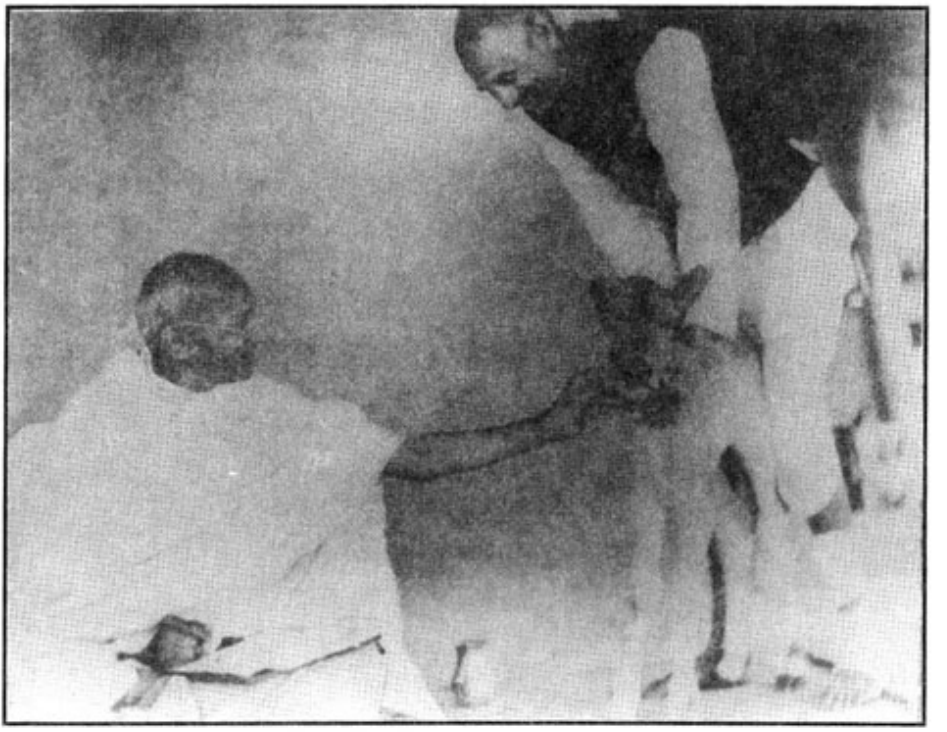

ऊपर के दो चित्रों में, बलवंत सिंह एक में नये जन्मे बछड़े को तथा दूसरे में बकरी के पिल्लू को गांधीजी को दिखा रहे हैं। गांधीजी उन्हें सहला रहे हैं।

० ० ०

१४. ग्रामोद्योग

When industry and virtue meet and kiss,
Holy their union and the fruit is bliss !

(जहां उद्योग और सद्‌गुणों का मेल होता है और वे एक दूसरे से प्रेम करते हैं, ऐसा संगम पावन करनेवाला होता है और उसका फल आनन्द होता है।)

गांधीजी सेवाग्राम में आये, उससे पूर्व मगनवाड़ी (वर्धा) में ग्रामोद्योग का काम प्रारम्भ करवा चुके थे। श्री जे. सी. कुमारप्पा जैसे प्रतिभाशाली व विद्वान कार्यकर्ता को गांधीजी ने यह जिम्मेवारी सौंपी थी। उन्होंने एक संस्था बनाकर अनेक विद्यार्थी प्रशिक्षित किये। ग्रामोद्योग में एक उद्योग नीरा और ताड़गुड़ था। गजानन नाईक नामक विद्यार्थी इस

कला में बहुत होशियार निकला। सेवाग्राम में जब गांधीजी रहने लगे तो उन्होंने गजानन नाईक को यहाँ बुला लिया और यह उद्योग प्रारम्भ करवाया। सेवाग्राम क्षेत्र में खजूर के बहुत पेड़ थे। इन वृक्षों के पत्तों से लोग चटाइयाँ और पंखे आदि बनाते थे। कोई कोई झाड़ को छेद करके, उस पर मटकी लगाकर रस (नीरा) एकत्रित करते थे और उससे ताड़ी (एक प्रकार की शराब) बनाते थे। इस व्यसन से लोगों को मुक्ति दिलाना तथा पेड़ के रस का भी सदुपयोग हो इस दृष्टि से गांधीजी ने सरकार के साथ लिखापढ़ी करके इन वृक्षों से मीठा नीरा और नीरे से गुड़ बनाने की एक योजना प्रारम्भ की। गजाननराव वृक्ष पर चढ़कर नीरा निकालने में स्वयँ तो कुशल थे ही, उन्होंने कुछ कार्यकर्ता और अनेक मजदूरों को भी यह काम सिखाया। प्रतिदिन सबेरे आश्रम में यह मीठा रस आने लगा। इसे 'नीरा' नाम दिया गया। सभी लोग प्रातः नाश्ते में इसका उपयोग करने लगे। नीरा जब तक ताजा रहता है सूर्य की धूप से गरम नहीं हो जाता तब तक यह मधुर व पोषक होता है। गाँव के लोग भी इसे शौक से पीने लगे। सबेरे-सबेरे अनेक लोग नीरा पीने आने लगे। दो पैसे में आधा रतल (२५० ग्राम) मीठा नीरा मिलता था।

नीरा से गुड़ बनाने के लिये कालांतर में भट्ठी बाँधी गई। गजाननराव गुड़ के नित्य नये नमूने बनाकर गांधीजी को दिखाते थे। उसे देखकर गांधीजी गुड़ के साथ-साथ गजाननराव की भी तारीफ करते थे। आश्रम में पूरा ताड़गुड़ का ही उपयोग होने लगा।

आगे पृष्ठ के चित्र में गांधीजी एक ताड़गुड़ की भट्ठी का निरीक्षण कर रहे हैं। पीछे की ओर कुमारप्पा खड़े हैं। कुमारप्पा ने ग्रामोद्योग तथा सर्वोदय पर अनेक पुस्तकें लिखी। वे सभी आधिकारिक मानी जाती हैं।

गांधीजी की दृष्टि से खादी सूर्य के समान है और ग्रामोद्योग उसके ग्रह हैं। इस सूर्यमंडल के आधार पर गाँव की संस्कृति सुरक्षित रहेगी तथा विकसित होगी। गाँव का धन खेती है। सभी उद्योग खेती पर निर्भर करते हैं और उद्योग से खेती की शक्ति बढ़नी चाहिये, इसलिये उन्होंने गो सेवा के साथ मिलकर चमड़ा उद्योग, कुम्हार काम (बर्तन व ईंट बनाना), तेलघानी,

मधुमक्खी पालन आदि उद्योगों को व्यवस्थित पद्धति से चलाकर उन्हें पुनः जीवित करने का प्रयत्न किया। कुम्हार उद्योग श्री चन्द्रप्रकाश अग्रवाल ने सँभाला। चर्मोद्योग श्री गोपालराव वाळुंजकर ने चलाया। तेलघानी तथा मधुमक्खी पालन का काम श्री छोटेलालजी ने स्वीकार किया। इस प्रकार गांधीजी को कुशल, उत्साही व मेहनती कार्यकर्ता मिलते गये और विभिन्न ग्रामोद्योग का काम विकसित होता गया।

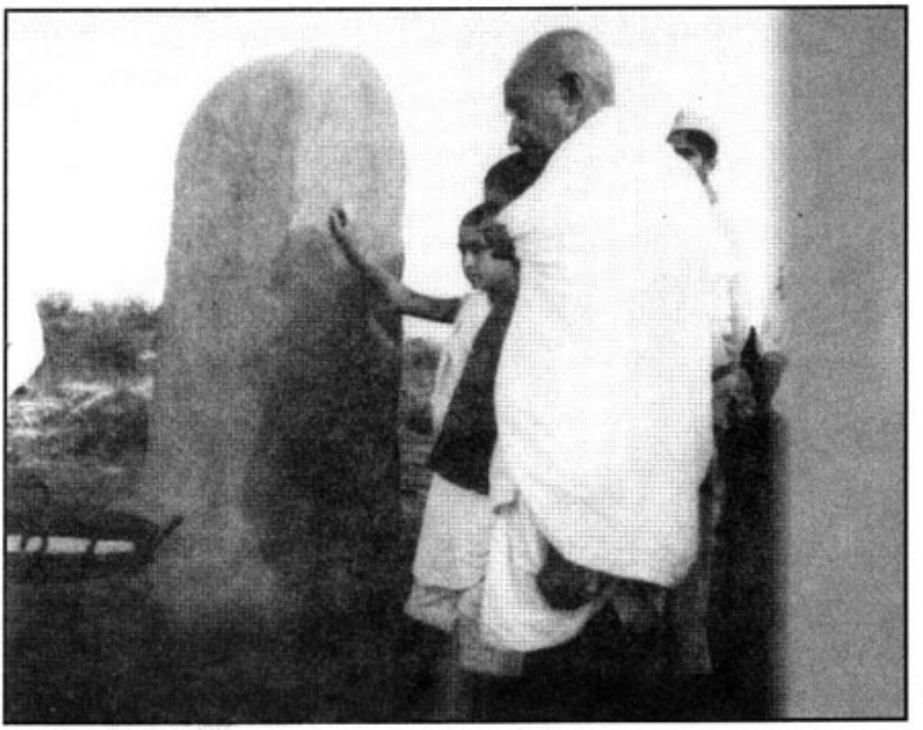

विदेशी सत्ता की गुलामी से जब कोई देश स्वतंत्र होता है तो उसे अपनी आर्थिक उन्नति करने के लिये अनेक प्रयोग करने होते हैं। विदेशों से भी मदद लेनी पड़ती है और कभी-कभी उधार लेकर कर्ज का बोझ भी उठाना पड़ता है। गांधीजी ने देश स्वतंत्र होने से पूर्व ही अपनी दूरदृष्टि से देश का विकास किस तरीके से हो इसका विचार कर लिया था। उनकी दृष्टि से स्वराज्य की मूल इकाई गाँव है, अतः उसकी उन्नति व विकास के लिए विविध प्रकार की योजनाएँ उन्होंने पहले ही तैयार कर ली थी। अनेक प्रयोग करके उन्होंने कार्यकर्ता तैयार किये और उनके जरिये उद्योगों का विकास किया। उन उद्योगों पर विभिन्न वैज्ञानिक साहित्य तैयार करवाया। परन्तु स्वतंत्रता मिलने पर देश के नेताओं ने

गांधीजी की सुझाई राह को छोड़कर पश्चिम का विकास का नमूना अपनाने का तय किया। उसी का परिणाम आज की कठिन परिस्थिति है। गाँव नष्ट हो रहे हैं और शहर समृद्ध हो रहे हैं। शरीर यदि बहुत मोटा हो जाता है तो उसमें ताकत नहीं रहती। वह मात्र माँस का लोथड़ा बन जाता है। आज के भारत के शहर वैसे ही हैं। गाँवों की उपेक्षा होने से खेती व ग्रामोद्योगों का विकास नहीं हुआ। गाँव के लोग गरीब ही रहे। अपने खाने के अनाज के लिये भी वे परमेश्वर की कृपा पर अवलम्बित रहते रहे। शरीर मात्र मोटा होने से समाज में विकृति बढ़ती गई और समाज में असंतोष फैलने के कारण वह विघटित होने लगा। आज तो सर्वत्र संघर्ष व हिंसा का साम्राज्य दिखता है। गांधीजी की सीख न मानने का फल जनता को भोगना पड़ रहा है।

० ० ०

१५. शिक्षा में क्रांति

माझिया जातीचें मज भेटो कोणी।
आवडीची धणी फेडावया।।

– तुकाराम

(मेरी जाति के (भक्त) मुझे मिलें। जिन्हें भगवान हृदय से प्रिय हैं, ऐसे लोगों से मिलने के लिये मैं तड़प रहा हूँ।)

दक्षिण अफ्रीका से सत्याग्रह में सफलता प्राप्त कर गांधीजी १९१५ में भारत आये। यहाँ आने पर तीन बार उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिये सत्याग्रह चलाये। पहला सत्याग्रह १९२१-२२ में हुआ। उसे उन्होंने चौरी-चौरा नरसंहार के कारण बन्द कर दिया। दूसरा सत्याग्रह १९३० में नमक के लिये किया। उसे १९३४ में वापस लिया। अंतिम सत्याग्रह १९४०-४२ में हुआ उसके बाद देश स्वतंत्र हो गया।

देश को स्वतंत्र करना ही गांधीजी का जीवन कार्य नहीं था। किसी

अवतारी पुरुष का मूल कार्य धर्म संस्थापना होता है। गांधीजी को देश में सत्य का साम्राज्य स्थापित करना था। उसके लिये उन्होंने अहिंसा को साधन माना था। इस प्रकार सत्यमूलक, अहिंसा प्रधान समाज रचना के लिये हमारे व्यवहार में भी क्रान्ति आवश्यक थी। गांधीजी के स्वराज्य का घटक गाँव था। गाँव स्वावलम्बी होने चाहिये। गाँव कम से कम पाँच बातों में स्वनिर्भर बने (१) अन्न, (२) वस्त्र, (३) निवास (४) आरोग्य, (५) शिक्षण।

सेवाग्राम में रहकर उन्होंने प्रथम चार बातों के लिये जो प्रयास किये उनका वर्णन पिछले अध्यायों में आया है। अब पाँचवीं बात के बारे में कहना है।

भारत की प्राचीन शिक्षा-पद्धति काल के प्रवाह में टिक नहीं सकी। अँग्रेज़ों के आने से पूर्व इस देश में सैकड़ों वर्षों तक अनेक राज्य थे। ईसा के बाद के १००० वर्ष में हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि राज्य हो गये। आगामी काल में अनेक शताब्दियों तक इस देश के अधिकांश भागों में मुसलमानों का राज्य रहा। उसके बाद मराठा शासन प्रबल रहा। उत्तर दिशा में सिखों का भी राज्य रहा, परन्तु वह बहुत समय तक नहीं रहा। इस अवधि में शिक्षण व्यवस्था उच्च वर्ग के हाथों में रही। उन्नीसवीं शताब्दी से अंग्रेज़ों का राज्य देश में फैलता गया, वह राज्य करीब १५० वर्ष रहा। देश के सभी लोगों को शिक्षा दी जाय यह विचार अँग्रेज़ों ने देश में फैलाया। परन्तु शिक्षण का माध्यम अँग्रेज़ी भाषा को रखने के कारण उनका विचार सफल नहीं हुआ। उनके शासनकाल में देश में साक्षरता का प्रमाण दस प्रतिशत के आसपास रहा। उनकी शिक्षण पद्धति बहुत कमजोर थी। किसी प्रकार के उद्योग से उसका सम्बन्ध नहीं था। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अँग्रेज़ी शिक्षा को 'तोते की शिक्षा' नाम दिया था। उस शिक्षण में तेजस्विता नहीं थी। वह शिक्षण बहुसंख्य समाज तक नहीं पहुँच सकी।

गांधीजी की दृढ़ राय थी कि शिक्षा का खर्च शिक्षा द्वारा ही

निकलना चहिये। अक्षरज्ञान शिक्षा नहीं है। वह तो शिक्षा का एक साधन-मात्र है। ऐसे अनेक शिक्षा के साधन हैं। प्रत्येक पाठशाला स्वावलम्बी बननी चाहिये। इसके लिये बच्चों को अक्षरज्ञान देने के साथ ही प्रारम्भ से ही किसी न किसी हस्तोद्योग की शिक्षा भी दी जानी चाहिये। बच्चे उत्पादक उद्योग करते-करते ही सीखेंगे भी। हाथों से काम करते रहने से बुद्धि का विकास होगा। बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास इस पद्धति से सधेगा। सबसे सरल और सार्वत्रिक होने जैसा उद्योग मात्र कताई ही है। इसके सिवाय खेती-बागवानी, सुथारी आदि उद्योग भी विद्यार्थी सीखेंगे। सिर्फ पुस्तकी शिक्षा से विद्यार्थी तोतारटंत बनता है। सिर्फ उद्योग करने से वह जड़ बनेगा। परन्तु शिक्षण का सम्बन्ध उद्योग से जोड़ा तो शिक्षण तेजस्वी व समर्थ बनेगा। बच्चों का चारित्रिक विकास भी होगा। उनके विभिन्न गुणों का भी विकास होगा। समाज से ऊँच-नीच की विषमताभरी भावना नष्ट होगी। श्रम व श्रमिक के बारे में समाज में आदर निर्माण होगा।

२२ अक्तूबर १९३७ को वर्धा में एक बड़ी शिक्षा परिषद हुई। उसमें भाषण हिन्दुस्तानी भाषा में हुए। कांग्रेसी मंत्रिमण्डल वाले प्रान्तों से वहाँ के शिक्षण मंत्री आये थे। देश के कुछ स्वतंत्र विचारक और शिक्षा विशेषज्ञ भी आये थे। रोज छह घण्टे की दर से दो दिन तक परिषद चली। दिल्ली की प्रसिद्ध जामिया मिलिया शिक्षा संस्था के अध्यक्ष डॉ. जाकिर हुसैन भी परिषद में उपस्थित थे। श्री आर्यनायकम और आशादेवी भी थे। इस परिषद में प्रस्तावित शिक्षा योजना पर हरिपुरा कांग्रेस में विचार हुआ। उसके प्रस्ताव के अनुसार हिन्दुस्तानी तालीमी संघ नामक संस्था अस्तित्व में आई। सेवाग्राम में इसका केन्द्र बना। प्रारम्भ में डॉ. जाकिर हुसैन अध्यक्ष तथा आर्यनायकम्जी मंत्री बने। इस शिक्षा पद्धति को बुनियादी तालीम नाम दिया गया। पूर्व बुनियादी, उत्तर बुनियादी व उत्तम बुनियादी आदि रूपों में शिक्षा का विकास होता गया। गांधीजी के देहान्त के पश्चात् सेवाग्राम में ग्रामीण विद्यापीठ की स्थापना हुई।

इस काम के निमित्त से जाकिर हुसैन बीच-बीच में सेवाग्राम आते रहते तब गांधीजी से मुलाकात करते थे। ऊपर का चित्र ऐसे ही एक प्रसंग का है। हुसैन साहब बहुत बड़े विद्वान थे। जर्मनी में रहकर उन्होंने अपनी उच्च शिक्षा पूरी की। उन्हें गांधीजी के शिक्षा विषयक क्रान्तिकारी विचार आकर्षक लगे। उन्होंने इस काम में बहुत सहयोग दिया। वे गांधीजी के सहकारी बन गये।

शिक्षा का फैलाव देशभर में सब लोगों तक करना हो तो इसके लिये बहुत अधिक धन की आवश्यकता होगी। सरकार के पास उतना धन नहीं है ऐसा सरकार का कहना था। इसलिए शराब बेचकर जो पैसा आता था, उससे शिक्षा का खर्च अँग्रेज़ सरकार चलाती थी। गांधीजी ने शराबबंदी करके पाप का पैसा न लेने का तय किया। अपनी शिक्षण अवधि में विद्यार्थी श्रम करके अपनी संस्था को स्वावलम्बी बनायें। इससे शिक्षा पूरी होने पर वे निरुत्साही और अपंग नहीं रहेंगे। वे तो अपने श्रम से अपना निर्वाह करने में समर्थ होंगे, ऐसा गांधीजी का मानना था।

० ० ०

१६. लोक संग्रह

तैसाचि हाही नानापरी। बहुत जनास शाहाणे करी।
नाना विद्या त्या विवरी। स्थूल सूक्ष्म।।

– दासबोध

(. . . उसी तरह यह बहुत लोगों को विभिन्न तरीकों से सयाना बनाता है, स्थूल तथा सूक्ष्म सभी तरह की विद्या उनके सामने प्रकट करता है।)

पोलैण्ड के एक इंजीनियर श्री मौरिस फ्रीडमेन भारत आये। उनको यंत्रविद्या की अच्छी जानकारी थी। वे मैसूर में काम करने लगे। वहाँ वे कुछ पुरुषार्थ करके दिखलाते, उससे पूर्व ही उनको रमण महर्षि का आकर्षण हुआ। वे संन्यासी बन गये और भारतानन्द नाम रख लिया। कुछ समय औंध राज्य में काम करने के पश्चात् वे सेवाग्राम आये। उन्हें गांधीजी के विचारों का आकर्षण हुआ। अहिंसक समाज में हस्तोद्योगों को प्रथम महत्व का स्थान होगा, यह विचार उनको भी जँच गया। इस दृष्टि से उन्होंने अनेक आविष्कार किये। उनकी मुख्य खोज थी 'धनुष तकली', इसमें उन्होंने चरखा व तकली दोनों का समन्वय किया था। गांधीजी को हस्तकला में की गई नई-नई खोजें पसंद थी ही। उन्होंने भारतानन्द की नई खोज का स्वागत किया और धनुष तकली पर कातना प्रारम्भ कर दिया। गांधीजी यंत्रवत् नहीं कातते थे। कोई भी उत्पादक मशीन चलाते समय वे उसकी बारीकियाँ देखते थे, उस पर स्वयँ प्रयोग करते और उसमें कुछ नये सुधार करते। यरवदा चक्र की खोज करने में गांधीजी का ही मुख्य योगदान है। उनका मानना था कि कोई भी साधन गरीब लोगों को सुन्दर, छोटा-सा, सरल व मुफ्त में मिलना चाहिये। इसी का विचार वे निरंतर करते रहते थे। आगे दिये हुए चित्रों में गांधीजी धनुष तकली का सूक्ष्म निरीक्षण करते दिखाई दे रहे हैं।

भारतानन्दजी सरंजाम कार्यालय सँभालने लगे। उनकी मदद में गोधरा के श्री राम प्रसाद व्यास पहुँच गये। इन दोनों कुशल कलावंतों ने अनेक सुधारकों तथा मिस्त्रियों को शिक्षित किया। ईंट, चूना, कवेलू इत्यादि चीजें सेवाग्राम में बनने लगीं।

१९३८ में श्री रामदास गुलाटी उत्तर-पश्चिम प्रान्त से सेवाग्राम आश्रम में रहने आये। वे घर बनाने के ज्ञाता थे। बड़े वेतनवाली सरकारी नौकरी छोड़कर वे आये और गांधीजी के काम में अपना जीवन अर्पण कर दिया। आश्रम के अनेक घर उन्होंने बाँधे। आश्रम में स्वच्छ पानी की व्यवस्था करना, गंदे पानी की नालियाँ आदि बनाकर व्यवस्था करना और आरोग्य की दृष्टि से आश्रम में वृक्षारोपण करना आदि काम उन्होंने किये। कहने की जरूरत नहीं कि ये सब काम उन्होंने गांधीजी की देखरेख में किये।

प्रारम्भ में आश्रम में बलवंत सिंह ने गौशाला प्रारम्भ की और बढ़ाई, परन्तु उन्हें गो-सेवा का शास्त्रीय ज्ञान नहीं था। इसलिए साबरमती सत्याग्रहाश्रम के गौशाला व्यवस्थापक श्री पारनेरकर को गांधीजी ने यहाँ बुलाया तथा यहाँ की गौशाला उनको सुपुर्द की। बलवंत सिंह को शास्त्रीय शिक्षण के लिए भेज दिया। पारनेकरजी को खेती भी सुपुर्द की गई।

सेवाग्राम आश्रम का संचालन करते समय गांधीजी का ध्यान बारीक-बारीक चीजों पर भी जाता था। प्रारम्भ के दिनों में वे स्वयँ सबको खाना परोसते थे। तब भोजन का प्रमाण और उसके गुणधर्म के बारे में सूचना देते रहते थे। आश्रम की खेती में जो पैदा हो वही सब्जी खानी चाहिये, वर्धा से खरीदकर न लाई जाय ऐसा उनका आग्रह रहता। सेवाग्राम गाँव का सुधार करने की भी उन्होंने योजना बनाई। नानावटी ग्राम सफाई करें, मुन्नालालजी गाँव के बच्चों को सिखायें तथा बेकार युवक-युवतियों को उद्योग शिक्षण देकर काम में लगावें, ऐसा उन्होंने तय किया। इसी तरह काम प्रारम्भ भी हुआ। गाँव में चलते-फिरते संडास बनाये गये, बहनों के लिये आड़ वाले संडास बनाये गये।

गाँव में खादी कार्य, आरोग्य विभाग व नीरा केन्द्र शुरू हो गये। काम बढ़ने पर सुखाभाऊ चौधरी को खादी व सफाई की जिम्मेवारी दी गई।

सेवाग्राम आश्रम प्रारम्भ में छोटा-सा था, परन्तु उसकी प्रगति तेजी से होती गई। सर्वत्र रचनात्मक सेवा कार्यों का विकास हुआ।

इवलेसें रोप लावियलें दारीं।
त्याचा वेलु गेला गगनावेरी।।

(घर के दरवाजे पर छोटा-सा पौधा लगाया। उसकी बेल आसमान तक ऊँची चली गई।)

आश्रम में आकर रहकर सीखकर तैयार होकर कितने कार्यकर्ता गये इसकी गिनती करना कठिन है। यह सारा गांधीजी की महान तपस्या का फल था। उन्होंने किसी को बाँधकर रखा नहीं। अपनी-अपनी आवश्यकता की पूर्ति करके लोग अपनी राह चले गये।

बहुतांचे अन्याय क्षमावे। बहुतांचे कार्यभाग करावे।
आपल्या परीस व्हावे। परावे जन।।

– दासबोध

सेवाग्राम आश्रम के माध्यम से गांधीजी ने अनेकानेक लोगों को संस्कार देकर देश का नैतिक, बौद्धिक व व्यावहारिक स्तर ऊँचा उठाने का महाप्रयत्न किया।

० ० ०

१७. हिंसा के जबड़े में

हिताचिया गोष्टी सांगूं एकमेकां। शोक मोह दुःखा निरसूं तेणें।।
एकमेकां करूं सदा सावधान। नामीं अनुसंधान तुटों नेदूं ।।

– नामदेव

(एक दूसरे को हितकारी बातें बतायें, एक दूसरे का शोक, मोह और दुःख दूर करें। एक दूसरे को सदा सावधान करें और ईश्वर का नामस्मरण कभी खंडित न होने दें।)

गांधीजी गाँव में आकर रहे। आश्रम में ग्राम सुधार के नानाविध प्रयोग प्रारम्भ हुए, फिर भी उनका आश्रम में लगातार रहना संभव नहीं हुआ। एक महीना भी पूरा वे नहीं कर पाते थे। कुछ दिन रहे कि बाहर के काम आ जाते थे। कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठकों में उपस्थित रहना पड़ता था। गांधीजी की सुविधा की दृष्टि से ऐसी बैठकें बार-बार वर्धा में ही होने लगीं। स्व. जमनालालजी ने अपना बंगला, पैसा और मनुष्यबल सभी गांधीजी के कामों में लगा दिया था।

१९३६ के प्रारम्भ में चीन और जापान से अनेक सज्जन गांधीजी से मिलने आये। गांधीजी की 'अहिंसा' की बात सबके मन में कुतूहल उत्पन्न करती थी। जापान के आक्रमण से चीन अपना बचाव कर रहा था। इसलिये चीन का प्रतिनिधि मण्डल गांधीजी से विशेष मार्गदर्शन की अपेक्षा रखता था।

३० दिसम्बर, १९३८ को गांधीजी ने मगनवाड़ी (वर्धा) में खादी ग्रामोद्योग संग्रहालय का उद्घाटन किया। देश की सच्ची ताकत गाँव में है इसलिये स्वतंत्रता के लिये जो क्रान्ति करनी होगी वह गाँवों को संगठित व समर्थ करने से ही होगी। अपना सारा अर्थशास्त्र उन्होंने लोगों को समझाकर कहा।

इसके बाद अनेक घटनाएँ हुईं। जैसे – कांग्रेस में विभाजन, सुभाषचन्द्र बोस का गांधीजी के विरुद्ध खुला विद्रोह और उन्हें मिली

तात्कालिक सफलता, राजकोट में गांधीजी को करना पड़ा सत्याग्रह, सर मारिस ग्वायर का निर्णय और उसकी प्रतिक्रिया आदि। आगे जाकर सुभाषबाबू पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई और उन्हें कांग्रेस अध्यक्ष पद छोड़ना पड़ा। राजेन्द्रबाबू नये अध्यक्ष बने। फिर भी गांधीजी की अहिंसा की परीक्षा होती रहती थी। रचनात्मक क्षेत्र में उन्हें अच्छे त्यागी-तपस्वी सेवकों की जमात मिली थी, परन्तु राजनैतिक क्षेत्र में अहिंसा निष्प्रभावी हो रही थी। आखिर १९३९ सितम्बर में यूरोप में विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। इंग्लैण्ड ने ३ सितम्बर को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध का एलान किया। इसके साथ ही भारत के अँग्रेज़ वायसराय ने देश के नेताओं अथवा प्रान्तीय धारा सभाओं को न पूछते हुए देश में जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। हिंसा का विकराल रूप प्रकट होने लगा। गांधीजी की अहिंसा के समक्ष हिंसा के मध्य रहने की चुनौती खड़ी हुई। उनके जीवन की यह बहुत बड़ी परीक्षा थी। देश में मतभेद तो थे ही, अनेक राजनैतिक पक्ष और विभिन्न मतों के नेता इनकी देश में भीड़ हो गई थी। दुर्भाग्य यह था कि ऐसी विषम परिस्थिति का सामना करने के लिये कांग्रेस में एकजुटता नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस कार्यसमिति की सभा वर्धा में ११-१४ सितम्बर को हुई। आगे के चित्र में इस बैठक में जवाहरलालजी के साथ गांधीजी सेवाग्राम से जाते हुए दिख रहे हैं। गांधीजी के जीवन की यह परीक्षा की घड़ी थी। युद्ध की आग सारे संसार को ग्रस रही थी। देश में एकता नहीं थी। अहिंसा पर पूर्ण निष्ठा केवल गांधीजी की ही थी। ऐसी संकट की स्थिति से देश को बचाने की जवाबदेही गांधीजी पर आ पड़ी थी।

फरवरी १९४०के तीसरे सप्ताह में बंगाल के मालिकंदा गाँव में गांधी सेवा संघ का वार्षिक अधिवेशन हुआ। उसमें गांधीजी ने यह संघ बंद कर दिया। सिर्फ दस कार्यकर्ताओं की एक व्यवस्थापक समिति कायम करके काम का क्षेत्र मर्यादित कर दिया। उसके बाद मार्च में रामगढ़ कांग्रेस अधिवेशन हुआ। महायुद्ध के कारण अँग्रेज़ सरकार और कांग्रेस के मध्य तीव्र मतभेद निर्माण हो गये थे। कांग्रेस को विश्वयुद्ध में

अँग्रेज़ सरकार की मदद करनी चाहिये, युद्ध समाप्त होने पर भारत को मदद के लिए सरकार परिषद बुलायेगी, ऐसा सरकार का कहना था। कांग्रेस का कहना था कि युद्ध समाप्त होने पर देश को स्वतंत्रता देगी ऐसी घोषणा सरकार आज ही कर दे। सरकार इससे सहमत नहीं थी। इस परिस्थिति में कांग्रेस ने सरकार से असहयोग की घोषणा कर दी। आठ प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल थे, उन सबने त्यागपत्र दिया। सर्वप्रथम मद्रास के मंत्रिमंडल ने त्यागपत्र दिया।

अगले पृष्ठ का दूसरा चित्र, मद्रास के मुख्यमंत्री श्री राजगोपालाचारी जब अपने मंत्रिमण्डल का (जून, १९४०) त्यागपत्र देने के बाद सेवाग्राम आकर गांधीजी से मिले, उस समय का है। परिस्थिति दिनोंदिन गम्भीर होती जा रही थी। भविष्य अनिश्चित था। जर्मनी का नेता हिटलर यूरोप के एक के बाद दूसरा देश जीतता जा रहा था। १७ जून १९४० को फ्रांस ने हार स्वीकार कर ली। इससे सारे देश चकित हो

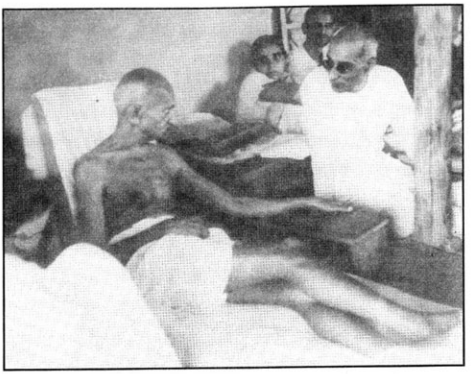

गये। अँग्रेज़ों का क्या होगा और अगर अँग्रेज़ हारे तो उनके अधीनस्थ देशों का क्या होगा? भारत का क्या होगा? इसी चिंता में सभी डूबे थे। गांधीजी की श्रद्धा और नेतृत्व दोनों की यह कसौटी थी।

० ० ०

१८. वानप्रस्थी की गृहस्थी

अवघाचि संसार केला ब्रम्हरूप। विठ्ठलस्वरूप म्हणोनियां।
तुका म्हणे जनां सकळांसहित। घेऊं अखंडित प्रेमसुख।।

(यह संसार भगवत्-स्वरूप है, क्योंकि ईश्वर उसमें व्याप्त है। तुकाराम कहते हैं, अब हम सब लोगों के साथ प्रेम सुख लेते रहेंगे।)

देश व दुनिया में आग लगी हुई थी, फिर भी सेवाग्राम आश्रम में सेवाकार्य तथा पारिवारिक आयोजन हो रहे थे। एक विशाल कुटुम्ब के पिता होने के नाते गांधीजी को समयोचित कर्तव्य करने ही पड़ते थे। आश्रम में ब्रम्हचर्य व्रत का पालन होता था, फिर भी आश्रम से बाहर

रहनेवाले गांधीजी के नाती-पोपों के विवाह आश्रम में होते रहते थे। सन् १९३९ व १९४० में आश्रम में अनेक विवाह हुए।

पहले कहा ही है कि गाँव में जाकर अकेले रहने के उद्देश्य से गांधीजी सेवाग्राम आकर रहे, फिर भी इस वानप्रस्थी का कुटुंब फैलता गया। १६ जून १९३६ को गांधीजी ने आदि निवास में रहना प्रारम्भ किया। ३ सितम्बर १९३७ को चिमनलाल शाह आश्रम में रहने आये। उन दिनों आश्रम में निम्न लोग रहते थे; भणसाली भाई, प्यारेलालजी, पारनेरकरजी, नानावटी, विजया बहन, लीलावती बहन, वेंकैया, मुन्नालालभाई, शारदा बहन, डाह्याभाई जानी व शांतिदास भाई। कस्तूरबा के साथ उनका पाँच वर्ष का पोता कान्हा भी रहा था। वह गांधीजी के तृतीय चिरंजीव रामदासभाई का सुपुत्र था। इस समूह में से अनेक साबरमती आश्रम में भी रह चुके थे। मीरा बहन इंग्लैण्ड के नाविक सेनापति एडमिरल स्लेड की कन्या थीं। अमतुस्सलाम बहन पटियाला के एक दीवान की कन्या थी। अमृतलाल नानावटी राष्ट्रीय गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद के कार्यकर्ता थे। इनका शिक्षण आचार्य काकासाहब कालेलकर के हाथों हुआ था। चक्रैया आन्ध्र से आया एक हरिजन युवक था। शारदा बहन चिमनलालभाई की लड़की थीं। चिमनलालभाई सत्याग्रह आश्रम के सबसे पुराने कार्यकर्ताओं में से एक थे। उनके सेवाग्राम आने पर आश्रम की व्यवस्था उन्हें सौंपी गई। फिर भी जब़ तक गांधीजी थे तब तक आश्रम व्यवस्था उनकी देखरेख में चलती थी।

आदि निवास, बापू कुटी तथा बा कुटी के बाद चौथी कुटी जमना कुटी थी। जमनालालजी ने अपने रहने के लिये बापूकुटी और बा कुटी के बीच में पूरब की ओर एक कुटी बनवाई। जब वे सेवाग्राम रहने के लिये आयेंगे तो उनके लिये एक घर चाहिये, इस दृष्टि से यह घर बनाया गया था। परन्तु यह उद्देश्य खास सफल नहीं हो सका। इटली के एक सज्जन इन्हीं दिनों आश्रम में रहने आये। उन्होंने अपना नाम शांतिदास रख लिया था, वे इस कुटी में रहने लगे।

वह कुटी खाली रहने पर स्वयँ गांधीजी भी उसका उपयोग कभी-कभी करते थे। आश्रम निवास के अंतिम कुछ महीने उन्होंने इसी कुटी में बिताये थे। १९४६ की गर्मियों में उन्हें बहुत खाँसी हो गई थी। डाक्टर ने उन्हें इस ऊँची नींववाली झोपड़ी में रहने की सलाह दी। उस अनुसार वे यहाँ रहे। २५ अगस्त १९४६ को वे यहाँ से दिल्ली और वहाँ से नोआखली गये। वे वापस सेवाग्राम आये ही नहीं। अतः कालांतर में इस झोंपड़ी को 'आखिरी निवास' नाम दिया गया।

गांधीजी सेवाग्राम में आकर रहने लगे, फिर भी महादेवभाई वर्धा ही रहते थे। वे गांधीजी की डाक लेकर रोज मगनवाड़ी से सेवाग्राम आते थे और शाम को वापस जाते थे। तब तक सेवाग्राम में डाकखाना नहीं था। महादेवभाई वर्धा से सेवाग्राम आनेवाले मेहमानों की देखभाल करते थे तथा मगनवाड़ी में ग्रामोद्योग के कामों की भी निगाह रखते थे। आगे जाकर उनकी तबियत बिगड़ी। उन्हें उच्च रक्तचाप की बीमारी हो गई। अतः उन्हें सेवाग्राम में ही रहने के लिये बुलाना आवश्यक हो गया। पहले कुछ दिन वे जमना कुटी में रहे। वे वहाँ अपने परिवार के साथ रहते थे। उनका रसोड़ा स्वतंत्र था। कुछ दिन बाद उनके लिये नया घर बनाकर दिया गया। यह कुटी बापू कुटी के पश्चिमोत्तर दिशा में है। (इसे महादेव कुटी कहा जाने लगा।)

१९४० के मध्य में प्यारेलालजी के जेल चले जाने के बाद उनके स्थान पर किशोरलालभाई नियुक्त किये गये। उनको अस्थमा की बीमारी थी। उनके साथ उनकी पत्नी गोमती बहन भी थीं। उनके लिये भी स्वतंत्र घर बनाकर दिया गया। महादेवभाई के घर के सामने ही पूर्व में किशोरलालभाई का घर बाँधा गया। उनके स्वास्थ्य के लिये अनुकूल हो, ऐसा घर बनाया गया था।

आश्रम में सभी लोगों के लिये सामूहिक रसोड़े में ही खाना खाने का नियम था। फिर भी महादेवभाई, किशोरलालभाई और पारनेरकरजी के लिये गांधीजी ने अपवाद रखा, ये लोग अपने-अपने घर पर खाना खा सकते थे। पारनेरकर विधुर थे पर उनकी वृद्ध माताजी उनके साथ रहती

थीं। उनकी कन्या शरद महिलाश्रम में पढ़ती थी। गांधीजी ने परिवारों को आश्रम में लाकर बसाया तो उनकी पारिवारिक जिम्मेवारियों के प्रति भी वे जागरूक रहे। विवाह योग्य कन्या की शादी उन्होंने स्वयँ कर दी।

आश्रम में सर्वप्रथम विवाह शारदा व विजया का हुआ। १९३९ के प्रारम्भ में दोनों विवाह एकाएक ही हुए। गांधीजी ने स्वयँ कन्यादान किया। श्री नानाभाई भट्टन ने पौरोहित्य स्वीकारा। अमरूद के बगीचे में शादी हुई। दोनों पक्षों के सात-आठ रिश्तेदार ही उपस्थित थे। एक दिन में विवाह विधि पूरी हो गई। प्रेक्षकों को गुड़-धनिया का प्रसाद दिया गया।

इसके बाद शरद, कनु गांधी, सौन्दरम् बहन, इन्दुमति गुणाजी के विवाह भी आश्रम में ही हुए। कनु की पत्नी आभा विवाहपूर्व कुछ वर्ष आश्रम में रहकर संस्कार ले रही थी। उन दोनों की शादी का निर्णय आश्रम में ही हुआ और शादी भी। अन्य वधुएँ (अधिकतर बाहर की थीं) शादी के बाद अपने-अपने पति के घर गईं।

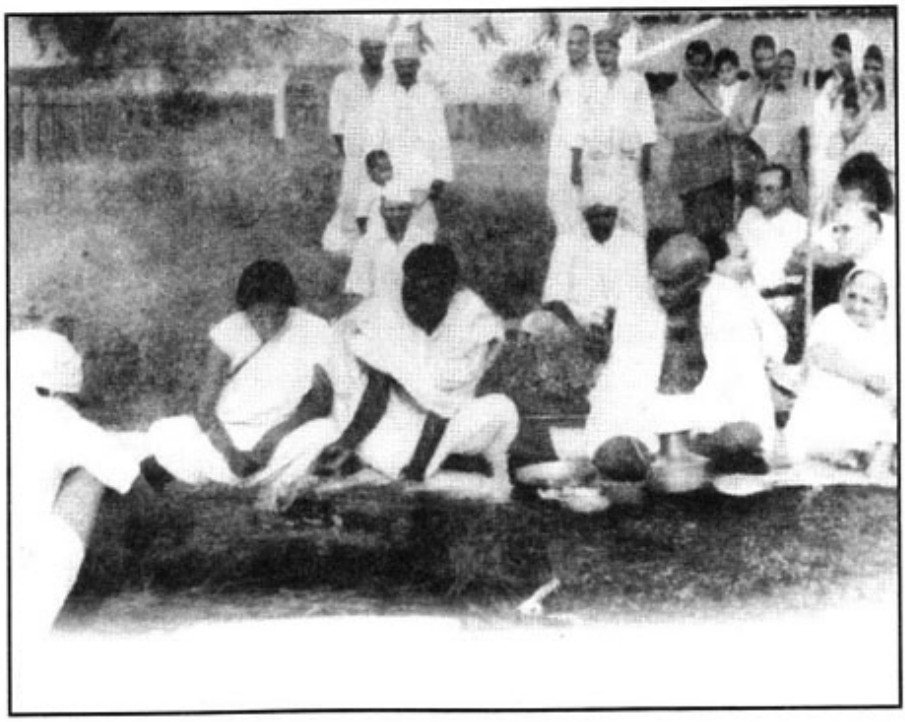

ऊपर के चित्र में केरल के कार्यकर्ता श्री वेलायुधन की विवाहविधि दिखाई गई है। गांधीजी व कस्तूरबा यजमान बने हुए हैं। बा के पास छोटी आभा बैठी है। परचुरे शास्त्री पुरोहिती कर रहे हैं। उनके पीछे की

ओर महादेवभाई और प्यारेलालजी दिख रहे हैं। ९-९-१९४० के दिन यह विवाह हुआ।

शिरीन काजी नाम की एक मुस्लिम कन्या का विवाह भी गांधीजी ने करवाया। आगे जाकर गांधीजी ने तय किया कि वर-वधू में से एक हरिजन और एक सवर्ण होगा तो ही उस विवाह को वे आशीर्वाद देंगे। इस तरह की एक परिपाटी ही बन गई थी। प्रा. रामचन्द्रराव (गोरा) ने अपनी कन्या का विवाह अर्जुनराव नामक हरिजन लड़के से करने का तय किया। गांधीजी ने इस विवाह को सम्मति दी, परन्तु वर को शिक्षण संस्कार देने की दृष्टि से विवाहपूर्व दो वर्ष आश्रम में रखा। दुर्भाग्य से उन्हें लग्न के समय आशीर्वाद देने के लिये गांधीजी रहे नहीं। उनकी अनुपस्थिति में ठक्कर बाप्पा ने आश्रम में रहकर वर-वधू का विवाह करवाया तथा उन्हें आशीर्वाद दिया।

इस प्रकार आश्रम में ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठापना होने पर भी आश्रम के द्वारा जरूरतमन्दों के लिये द्वार खोल दिये जाते थे। विवाहित लोगों को ब्रह्मचर्य पालना चाहिये, ऐसी मान्यता आश्रम में थी। जिन्हें गृहस्थाश्रमी जीवन पसंद है, उन्हें आश्रम से बाहर रहने को कहा जाता था अथवा आश्रम के आसपास स्वतंत्र व्यवस्था कर दी जाती थी। मानवी मर्यादाओं का भान गांधीजी को सतत रहता था। जो स्त्री-पुरुष उन्हें छोड़ना नहीं चाहते थे, परन्तु आश्रम के सभी नियमों का पालन भी नहीं कर पाते थे, ऐसों को उन्होंने आश्रम के सूर्यमंडल में फिरनेवाले ग्रह बनाकर रखा। पर अपने प्रभाव से बाहर नहीं जाने दिया।

नद्या, ओढे, नाले मिळति समभावें जलधिला।

(नदी, नाले आदि मिलकर समभाव से समुद्र में लीन हो जाते हैं।)

अपने इस विशाल परिवार को अपने साथ लेकर चलने में गांधीजी को अपार आनन्द आता था।

० ० ०

१९. गाँव में भारत-दर्शन

जो उत्तम गुणें शोभला। तोचि पुरुष महा भला।।
कित्येक लोक तयाला। शोधीत फिरती।।

– दासबोध

(जो उत्तम गुणों से युक्त है, वही श्रेष्ठ भला पुरुष है। उसे अनेक लोग खोजते फिरते हैं।)

गांधीजी का नाम संसार में सर्वत्र फैला हुआ था। एशिया, अफ्रीका, यूरोप व अमरीका – इन सभी महाद्वीपों से विविध धर्म, विविध वर्ण व विभिन्न स्तरों के स्त्री पुरुष गांधीजी से मिलने आते रहते थे। कोई-कोई उनसे मिलकर, बातचीत करके संतुष्ट होकर चला जाता था, तो कोई आश्रम में कुछ समय रहकर यहाँ का सत्संग लाभ लेकर जाता था। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध सांसद लार्ड लोधियन ने पत्र लिखकर गांधीजी से मिलने की इच्छा व्यक्त की। उन्हें मुम्बई में बुलाकर मुलाकात देना गांधीजी के लिए संभव था परन्तु मुम्बई में उन्हें सच्चे भारत का दर्शन नहीं होता और वे भारत के बारे में गलत धारणा बनाकर जायेंगे, ऐसा गांधीजी को लगा, अतः उन्होंने लार्ड लोधियन को सेवाग्राम आकर मिलने को कहा। लार्ड लोधियन इसके लिये तैयार हो गये और वैसी सूचना उन्होंने भेज दी। १९४० की गर्मी में वे सेवाग्राम आये। गांधीजी ने जमनालालजी को सूचना दी कि वे लार्ड लोधियन को बैलगाड़ी में बिठाकर सेवाग्राम लायें। जमनालालजी को थोड़ा संकोच हुआ परन्तु गांधीजी की सूचना का उल्लंघन नहीं हो सकता था। जब लार्ड लोधियन जमनालालजी की बैलगाड़ी से आश्रम पहुँचे, तो गांधीजी ने प्रार्थना भूमि पर उनका स्वागत किया। उनके रहने की व्यवस्था आखिरी निवास में की गई। अपने मार्गदर्शन में गांधीजी ने उनके लिये सब प्रकार की सुविधाएँ करके रखी थी। भोजन के समय सभी लोग कतार में बैठते थे। गांधीजी लार्ड को अपने पास बिठा लेते थे और अपने हाथों से परोसते थे। उन्हें

क्या पसंद है आदि की जानकारी लेते थे। लार्ड लोधियन आश्रम में तीन दिन रहे। वे सबसे हिलमिल गये। उन्हें गांधीजी के साथ आश्रम जीवन पसंद आया। वे बोले, "मेरे पूरे जीवन में ये तीन दिन जितनी शांति से बीते, ऐसा एकांत मुझे कभी नहीं मिला। मुझे अपार शांति का अनुभव हुआ।"

ऊपर के चित्र में गांधीजी लार्ड लोधियन से खटिया पर बैठकर बातचीत कर रहे हैं। वे जिस जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं, वह जनता देश में कहाँ और कैसे रहती है, यह दिखलाने के लिये ही गांधीजी ने लार्ड को सेवाग्राम बुलाया था। उन्हें सच्चे भारत का दर्शन हुआ। जो विदेशी लोग शहरों में घूमते हैं और शहरों में ही रहते हैं उन्हें सच्चे भारत का दर्शन नहीं होता। गाँव में गये बिना सच्चा भारत नहीं दिखेगा।

इसलिये लार्ड लोधियन गाँव में आये और तीन दिन रहे। इससे उन्हें जनता जनार्दन का सच्चा दर्शन हुआ।

यह तो गांधीजी की दृष्टि रही। लार्ड लोधियन को जो आनन्द व शान्ति मिली, वह वे क्या गांधीजी के बिना किसी गाँव में बैठकर प्राप्त कर सकते थे? ऐसा कहा नहीं जा सकता। स्वयँ गांधीजी को इस गाँव में बसे अपने आश्रम में रहकर शान्ति व जीवनानन्द मिलता था। इसलिये वे गाँव में ही रहने का आग्रह करते थे। भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति उनके मन में पूर्ण विरक्ति का भाव था। इसी कारण वे अपनी परिस्थिति में तटस्थ रह सकते थे। इस संसार में मेरी मालिकी की एक भी वस्तु नहीं है, ऐसा प्रथम वाक्य उन्होंने अपने मृत्युपत्र में लिखा था। लोभ-मोह-जनित आनन्द सच्चा नहीं हो सकता। शहर से बाहर सृष्टि का काम-रूप दृष्टिगोचर होता है। उसकी अनन्त विविधता होती है। इस कामरूपिणी सृष्टि से तादात्म्य साधना एक विरक्त एवं तटस्थ के लिये ही सहज संभव है। इसलिये ऐसा मनुष्य जीवन में सर्वत्र रसास्वादन कर सकता है। वह कभी जीवन-विमुख नहीं होता। ऐसे पुरुष की बुद्धि कुशाग्र होती है। वह इस संसार में रहकर सर्वत्र प्रसन्नतापूर्वक एवं अदम्य उत्साह के साथ कार्य का स्वरूप फैलाता रहता है। फिर भी वह कभी थका हुआ या दुःखी नहीं होता। लोग ऐसे पुरुष का साथ ढूँढ़ते रहते हैं।

लार्ड लोधियन बैलगाड़ी से ही वापस गये।

० ० ०

२०. बैलों का त्यौहार

अवघा आणिला परिवार। गोपी गोपाळांचा भार।।

– तुकाराम

(पूरा परिवार लाया, जिसमें गोपी-गोपाल सभी समाये हैं।)

महाराष्ट्र में पोला एक विशेष प्रकार का त्यौहार है। कहीं कहीं इसे 'बेंदूर' भी कहते है। यह त्यौहार बरसात के दिनों में मनाया जाता है। भारत की संस्कृति कृषि प्रधान होने से अनेक त्यौहार खेती के आसपास गुँथे हुए हैं। खेती का एक मुख्य साधन बैल है और यह जीवित साधन है। प्राचीनकाल में किसी मनुष्य को श्रेष्ठता का वर्णन 'पुरुषर्भ' यानी पुरुषों में ऋषभ (बैल) – इस तरह आदर और इज्जत के साथ किया जाता था। बैलों की शक्ति पर ही खेती चलती है, अनाज पकता है और मनुष्य का जीवन तो अनाज पर ही अवलम्बित है। इसलिए प्राचीनकाल से बैलों की पूजा की जाने लगी। उनके लिये एक विशेष त्यौहार मनाया जाने लगा। पोला के दिन बैलों से कोई काम नहीं लिया जाता है। उन्हें स्नान करवाकर साफ करते हैं, उन्हें सजाते हैं, पूजा करते हैं, और उन्हें पूरन-पोली (एक प्रकार की मीठी रोटी) खाने को देते हैं। शाम को सजे हुए बैलों का वाद्य-यंत्रों के साथ जुलूस निकालते हैं।

सेवाग्राम आश्रम में गौशाला और खेती दोनों थी। इसलिये हर वर्ष गो-पूजा और बैल पूजा के त्यौहार उत्साहपूर्वक मनाये जाते थे। इन उत्सवों में गांधीजी सम्मिलित होते थे और सभी आश्रमवासियों के साथ हँस-बोलकर त्यौहार का आनन्द मनाते थे।

अगले दो फोटो इस प्रकार के हैं। हर वर्ष होनेवाले इन त्यौहारों में गांधीजी ने उत्साह से भाग लिया था। किसी भी त्यौहार के समय बच्चे ही सबसे ज्यादा आनन्दमय होते हैं। साथ के चित्र में भी उनका यह आनन्द सजीव दिखता है।

सेवाग्राम गाँव में गायों की संख्या बहुत थी। गाय अगर अच्छी नस्ल की व पुष्ट हो तो उसकी संतान बैल भी अच्छे होते हैं। गाय तो खेती और बैल दोनों की माता है अर्थात् मनुष्य की माता है। बैलों की सिर्फ पूजा करके उनके ऋण से मुक्त हो जाने का कभी गांधीजी ने नहीं

सोचा। गाय-बैलों की हालत सुधरे इसके लिये उन्होंने अनेक प्रयत्न किये। हिन्दू समाज गौपूजक जरूर है पर उसी ने गाय की दुर्दशा कर रखी

है। गाँव के लोग गाय से गोबर व बैल मिले इतनी ही अपेक्षा रखते हैं। उनकी उतनी ही देखभाल की जाती है। उनका दूध-उत्पादन बढ़ाने का विचार कभी किया नहीं। दूध के लिये तो वे भैंस पालते हैं।

गाँव की सभी गायों का दूध आश्रम की ओर से खरीदने का काम गांधीजी ने प्रारंभ किया। सबकी आवश्यकता पूरी होने पर जो बचे उसका घी बनाकर शहर में बेच दिया जाने लगा। छाछ गाँव के लोगों को मुफ्त में दी जाने लगी। दूध में से मलाई निकालकर दूध गरम करके सेवाग्राम गाँव की पाठशाला के बच्चों को गुड़ के साथ पीने को दिया जाने लगा। सभी बच्चे आश्रम में आकर दूध पीते थे।

आगे चलकर पारनेरकरजी ने इस काम को और विकसित किया। आस-पास के गाँवों से भी गाय का दूध आश्रम में एकत्रित किया जाने लगा। दूध में चिकनाई का प्रमाण शास्त्रीय ढंग से जाँचा जाता था तथा गाय मालिक को गाय के लिये पौष्टिक खुराक दी जाती थी। आगे जाकर नियम कड़े किये गये, इससे दो वर्ष तक यह व्यवस्था बन्द रही। हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की शांता बहन नारुलकर ने पुनः यह व्यवस्था प्रारम्भ की। तब से गाय व बैलों की नस्ल में बहुत सुधार हुआ तथा गोपालक लोग अपने पाँव पर खड़े हो सके।

आजकल खेती में ट्रैक्टर का उपयोग बढ़ता जा रहा है। गांधीजी को यह पसन्द नहीं था। उनका कहना था कि मनुष्य को मशीन का गुलाम नहीं बनना चाहिये। मशीनों पर उसका नियंत्रण हो। मशीनों से मनुष्य बेकार न बने, वरन् उनके श्रम की बचत हो, ऐसे यंत्र होने चाहिए। इस दृष्टि से ट्रैक्टर का उपयोग करने से बैल बेकार होंगे, अतः उन्होंने ट्रैक्टर का विरोध किया। उन्होंने अपनी बात वैज्ञानिक ढंग से देश के समक्ष रखी। आगे के अनुभव से यही साबित हुआ कि ट्रैक्टर का लगातार उपयोग करने से जमीन की उपजाऊ शक्ति कम होती जाती है। बैलों से हल चलाने से जमीन की शक्ति कायम रहती है। बैलों से गोबर की खाद भी मिलती है यह अतिरिक्त लाभ होता है।

० ० ०

२१. गोवंश विस्तार

स्वानंदाचे ताटीं धूप दीप पंचारती वो।
ओवाळिली माता विठाबाई पंचभूतीं वो।

– तुकाराम

(पंचभूत ही मानों हमारी आनन्द की थाली में धूप, दीप आदि हैं, जिनसे हम माता विठाबाई की आरती उतारते हैं।)

गांधीजी की अर्धांगिनी माता कस्तूरबा बहुत भक्तिभाव वाली थीं। गांधीजी की भक्ति शास्त्रीय थी। समाज से हिलमिल गई थी। उसका लक्ष्य आम जनता की सेवा था। उनकी भक्ति मन में विचारों को प्रेरणा देती थी। विचार वाणी और कर्म में प्रकट होते थे। इस प्रकार उनकी सारी शक्ति जनता के कल्याणार्थ खर्च होती थी। इसके विपरीत कस्तूरबा की भक्ति सगुण उपासना की द्योतक थी। उनके संस्कार परम्पराजन्य थे। उन्हें सारे व्रत-त्यौहार मालूम थे। गांधीजी को अपने एकादश व्रत जितने प्रिय थे उतने ही प्रिय कस्तूरबा को अपने परंपरागत व्रत-त्यौहार थे। वे कभी कोई व्रत छोड़ती नहीं थीं। व्रत-त्यौहार पर आश्रम के सभी लोगों को प्रसाद अवश्य मिलता था।

गांधीजी की गो-भक्ति से गो-सेवा संघ जनमा। गायों की हालत सुधरी। इससे पशु और मानव दोनों को लाभ हुआ। गो पूजा की जब शास्त्रीय व्याख्या की गई तो गोपालन एक जीवन कर्तव्य है यह समाज के ध्यान में आने लगा। कस्तूरबा को श्रावण महीना आते ही 'बोरचौथ' (श्रावण चतुर्थी) का स्मरण होता था और वे बलवंत सिंह से कहतीं, 'मुझे आज गो पूजा करनी है। एक अच्छी-सी गाय व बछड़ा लेकर आओ।' बलवंतसिंह 'देवकी' नामक गाय व उसका बछड़ा लाकर खड़ा कर देते थे। बा पूजा साहित्य लेकर उसकी पूजा करती थीं।

अगले चित्र में कस्तूरबा गोपूजा के लिये तैयार खड़ी दिखती हैं।

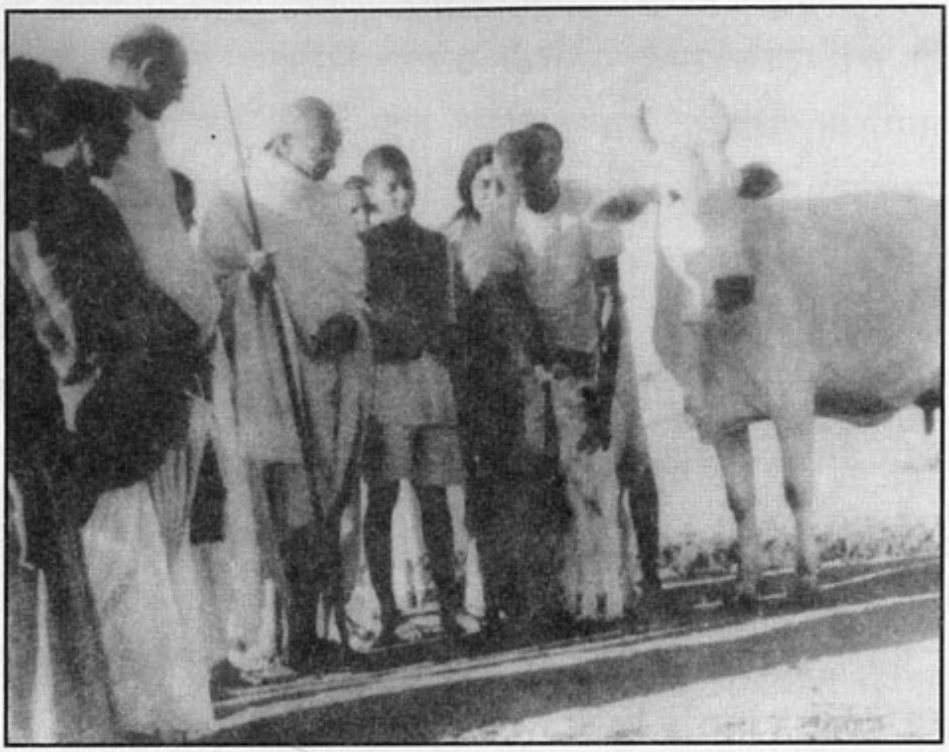

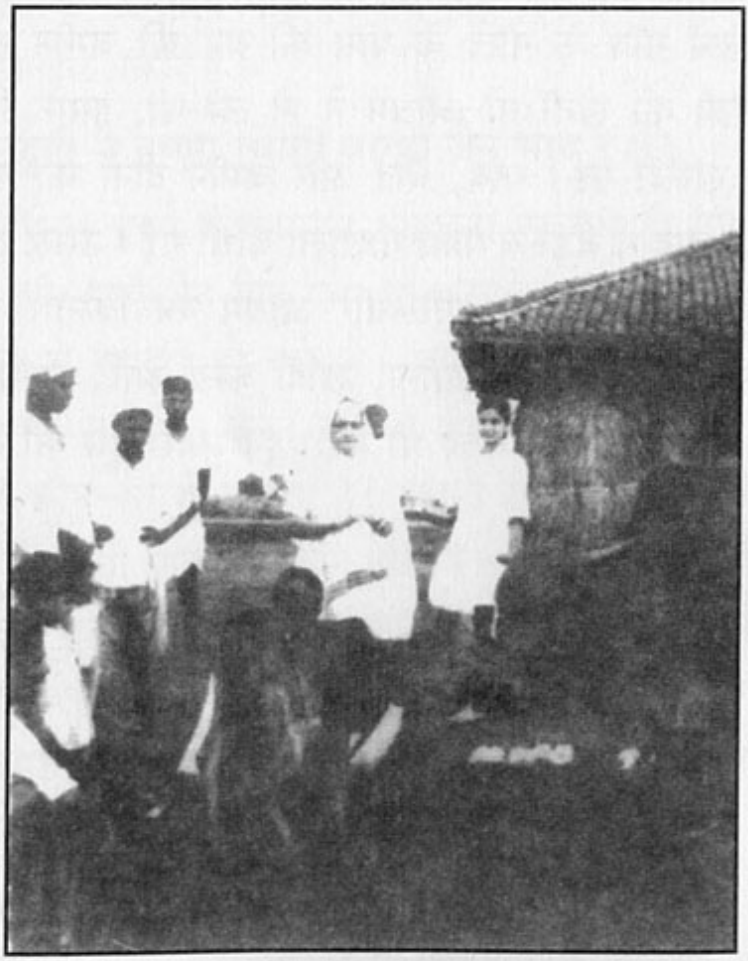

दूसरे चित्र में एक स्वस्थ गो-माता अपने सद्यजात बछड़े के साथ खड़ी है। सबके साथ गांधीजी उसका निरीक्षण कर रहे हैं। पालतू जानवरों के स्वास्थ्य, उनका पोषण तथा संतुष्टि इस ओर गांधीजी का ध्यान रहता था। गीता के कथन के अनुसार वैश्य का धन 'कृषि गोरक्षा वाणिज्य' में है। गांधीजी वैश्य थे। उन्होंने शास्त्र-रचित धर्म का मन:पूर्वक पालन किया। कस्तूरबा पुराने शब्दों को पकड़कर गोमाता की पूजा करके संतुष्ट होती थीं। गांधीजी की दृष्टि थी कि सभी प्राणियों में ईश्वरीय विभूति प्रकट हो, उससे समाज का भला हो तथा सबका भला होकर सभी सुखी हों। इस प्रकार की उपासना से अंत में मनुष्य का अहंकार ईश्वरीय तत्व में विलीन हो जाता है, यही गांधीजी की दृष्टि थी। इस प्रकार देखें तो इस विलक्षण दम्पत्ति ने प्राचीन तथा आधुनिक दोनों संस्कृतियों का संवर्धन किया।

आश्रम में और गाँव में गायों की संख्या बढ़ती गई। तब गायों के चरने के लिये गाँव के नाले के पास की बन की जमीन खरीदी गई। जमनालालजी की खेती तो आश्रम ने ले ली थी, इसके सिवाय और जमीन भी खरीदी गई। गाय, बैल और जमीन दोनों का परस्पर पूरक सम्बन्ध है। बाद में बड़ी व पक्की गौशाला बाँधी गई। उससे लगकर पक्का दूध घर भी बनाया गया। धीरे-धीरे आश्रम का विस्तार होता गया। तालीमी संघ, कस्तूरबा दवाखाना, खादी केन्द्र आदि संस्थाएँ बनीं तो कार्यकर्ता भी बढ़ते गये। बच्चे भी बढ़े। इन सबसे दूध की आवश्यकता भी बढ़ी।

० ० ०

२२. या देवी शक्तिरूपेण

भूतीं देव म्हणोनि भेटतों या जना। नाहीं हे भावना नरनारी।।
जाणे भाव पांडुरंग अंतरींचा। नलगे द्यावा साचा परिहार।।
दयेसाठीं केला उपाधि पसारा। जड़ जीवा तारा नाव कथा।।
तुका म्हणे नाहीं पडत उपवास। फिरतसें आस धरोनियां।।

(सभी प्राणियों में भगवान् है, इस भावना से मैं सबसे मिलता हूँ। वह पुरुष है या स्त्री यह भावना मुझमें नहीं है। ईश्वर मेरे मन के भाव समझता है। उन्हें साबित करने की आवश्यकता नहीं। लोगों के प्रति करुणा होने के कारण मैं कथा-कीर्तन करता हूँ क्योंकि उसी से संसार के बंधनों से छुटकारा मिलता है। तुकाराम कहते हैं कि जो श्रद्धा रखकर काम करते हैं उन्हें भूखा नहीं रहना पड़ता।)

गांधीजी के परमप्रिय गीत 'वैष्णव जन' (लक्षण बतलानेवाला) उसमें एक पंक्ति इस प्रकार है -

'समदृष्टी ने तृष्णा त्यागी परस्त्री जेने मात रे।'

गांधीजी का हृदय लोकमानस से इतना एकरूप हो गया था कि उनके मन से स्त्री-पुरुष भेद मिट गया था। उनमें आसक्ति अथवा तृष्णा नहीं थी। अतः वे समदृष्टि हो चुके थे। आगे जाकर वे अपनी पत्नी को भी 'बा' कहकर संबोधित करने लगे थे। स्त्री-उद्धार का इससे उत्तम उदाहरण और कौन-सा हो सकता है? स्वामी रामकृष्ण परमहंस को भी अपनी पत्नी में काली माता के दर्शन होते थे। गांधीजी जब सेवाग्राम में आकर रहने लगे तब उनकी उम्र के साठ वर्ष पूरे होकर वे सत्तर के करीब आ गये थे। इसलिए स्त्री-मात्र उनकी बहन या पुत्री के समान लगती थी। स्त्रियों के विशिष्ट गुणों का वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय में इस प्रकार आया है -

'कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।'

(कीर्ति, श्रीः, वाणी, स्मृति, मेधा, धृति व क्षमा)

उपरोक्त सात गुण स्त्रियों में हैं, परन्तु वे कुटुम्ब के संकुचित बन्धनों में जकड़ी हुई हैं, अतः उनका समुचित विकास नहीं होता। स्त्रियाँ अगर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की वृत्ति से समाज में व्यवहार करने लगेंगी, तो उनमें ये गुण और उनकी शक्ति में तो वृद्धि होगी ही, साथ ही समाज का वातावरण भी शुद्ध बनेगा। अगर स्त्रियों ने राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश किया तो वह क्षेत्र भी शुद्ध होगा, ऐसी गांधीजी की मान्यता थी।

इसलिए प्रारम्भ से ही गांधीजी ने स्त्रियों को सार्वजनिक सेवा क्षेत्र में प्रवेश करने को प्रोत्साहित किया। इसका प्रारम्भ उन्होंने अपने गांधी कुटुम्ब से ही किया। उनकी पत्नी तथा बहुएँ दक्षिण अफ्रीका में जेल यात्रा करके आईं। भारत आने पर उन्होंने सत्याग्रह आश्रम साबरमती में बहनों को योग्य संस्कार देकर कार्यकुशल बनाने का प्रयत्न किया। आश्रम की अशिक्षित बहनों ने भी सत्याग्रह में भाग लिया, लाठियाँ खाई, जेल गईं और समाजसेवा की।

सेवाग्राम आने पर बहनों को सेवा के और अधिक अवसर प्राप्त होते गये। प्रारम्भ में आश्रम में मीरा बहन और कस्तूरबा थे। बाद में विजया बहन पटेल, अमतुस्सलाम बहन, लीलावती बहन, शारदा बहन, मुन्नालालजी की पत्नी कंचन बहन, शांताबाई नारुलकर, जौहरा बहन, डॉ. सुशीला नैयर, राजकुमारी अमृत कौर, पुष्पा बहन, आभा चट्टोपाध्याय, रंगनायकी, रामप्यारी बहन, ऐसी अनेक बहनें सेवाग्राम आश्रम में आई, कुछ समय आश्रम में रहकर संस्कार ग्रहण किये तथा अपने-अपने क्षेत्र में जाकर सेवा कार्य में लगीं। स्त्री पुरुषों की सहधर्मिणी होती है। कई बहनें आश्रम में रहकर सेवा कार्य करती थीं। महादेवभाई की पत्नी दुर्गा बहन, चिमनलालभाई की पत्नी शकरी बहन, किशोरलालभाई की पत्नी गोमती बहन, ऐसे ही कुछ नाम हैं।

विजया बहन गुजरात से आई थीं। प्रारम्भ में बा के काम में सहायता करती रहीं। कुछ दिन गांधीजी की लेखिका का काम भी उन्होंने किया। १९३९ में उनकी शादी हो गई। बाद में वे चली गईं।

अमतुस्सलाम बहन गांधीजी की व्यक्तिगत सेवा करती थीं। सिंध प्रांत में जब हूर विद्रोह का प्रश्न खड़ा हुआ तो गांधीजी ने उनको उस प्रान्त में जाकर शांतिकार्य करने को कहा था। उन्होंने यह काम बहुत प्रभावशाली ढंग से पूरा किया। गांधीजी जब नोआखाली गये तब वे भी वहाँ गईं और अपनी निर्भयता, सर्व-धर्म-समभाव तथा असीम त्याग शक्ति से उन्होंने वहाँ के अधिसंख्य मुसलमानों को प्रभावित किया।

ऊपर के चित्र में गांधीजी के दाहिने हाथ की तरफ जोहरा बहन तथा बायें हाथ की तरफ लीलावती बहन खड़ी हैं। अमतुस्सलाम बहन ने गुजरात में चरखा प्रचार का उत्तम कार्य किया। १९४० के आसपास उन्होंने साबरमती से एक मुसलमान दम्पत्ति को सेवाग्राम आश्रम में लाया। श्री अकबरभाई और उनकी पत्नी जोहरा बहन पाँच वर्ष सेवाग्राम आश्रम में रहे। जोहरा बहन ने कस्तूरबा ट्रस्ट की ओर से परिचारिका का शिक्षण लिया। बाद में दोनों उत्तर गुजरात के एक गाँव में रहकर सेवा करने लगे।

लीलावती बहन पहले साबरमती आश्रम में थीं। १९३० से १९३४ तक उन्होंने सत्याग्रह में भाग लिया और जेल भी गई थीं। उनका

शिक्षण गुजराती में हुआ था। साबरमती में उन्हें शान्ति नहीं मिली अतः वे सेवाग्राम आईं। गांधीजी ने उन्हें सामूहिक रसोई घर की जिम्मेवारी सौंपी। परन्तु उन्हें छोटे भाई की चिन्ता रहती थी। उनको चिन्ता मुक्त करने के हेतु से गांधीजी ने उनके भाई को आश्रम में बुला लिया। उसे पहले आश्रम में काम दिया। बाद में काम सीखने के लिये मगनवाड़ी रखा। परन्तु वह फिर भी टिक नहीं सका। लीलावती बहन को भी अँग्रेज़ी सीखने की बहुत इच्छा थी। अतः गांधीजी ने उन्हें मुम्बई में रखकर छात्रवृत्ति की व्यवस्था करवाई। कालान्तर में वे मैट्रिक उत्तीर्ण हुईं और एम.बी.बी.एस. होकर अपना व्यवसाय करने लगीं।

अमला बहन जर्मनी की यहूदी जाति की थीं। जर्मनी में नाजी लोगों के अत्याचारों से बचने के लिये वे भागकर भारत आ गई थीं। उमादेवी पोलैण्ड की थीं। दूसरे विश्वयुद्ध में जब पोलैण्ड पर आक्रमण हुआ तो वे वापस स्वदेश गयीं। चिमनलालभाई की कन्या शारदा बहन मैट्रिक तक पढ़ी थीं। वह गांधीजी के पास रहकर छोटे-मोटे काम करती थीं। उनका स्वास्थ्य बचपन से ही नाजुक और कमजोर था। १९३९ में उनका विवाह हुआ और वे अपने पति के साथ सूरत चली गईं। शांता बहन नारुलकर एक पढ़ी-लिखी महिला थीं। वे विदेश में शिक्षित होकर आई थीं। जब हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का शिक्षा का काम फैलने लगा तो यहाँ अनेक लोग एकत्रित होते गये। उनमें से एक शान्ता बहन थीं। गांधीजी की प्रेरणा से वे सेवाग्राम गाँव में रहकर सेवा करने लगीं। १९४५ से करीब चार वर्ष तक उन्होंने अकेली सेवाग्राम गाँव में रहकर वहाँ अनेक सेवा कार्य खड़े किये। वहाँ विद्यालय चलाया, खादी उत्पादन होने लगा, नीरा केन्द्र प्रारम्भ हुआ, ग्राम आरोग्य केन्द्र, सहकारी गौशाला, ग्राम सफाई, न्याय पंचायत, ग्राम पंचायत, सहकारी बस्ती, सहकारी दूकान आदि अनेक प्रवृत्तियाँ खड़ी करके गाँव का रूप ही बदल दिया। रंगनायकी बहन मद्रास की रहनेवाली थीं। वे बीच-बीच में आश्रम में आकर रहती थीं। वे गांधीजी को अपने सगे पिता के समान मानती थीं। देवी बहन मुंबई की थीं। उनकी भी दिक्कतों को गांधीजी ने दूर किया।

१९४२ में पूर्वी पंजाब की रामप्यारी बहन बीच-बीच में सेवाग्राम आकर रहती थीं। उन्होंने मिट्टी का एक चूल्हा बनाया था जिस पर पाँच-सात रोटियाँ एकसाथ सेंक सकते थे। सेवाग्राम के एक हरिजन बालक को लेकर वे वापस पंजाब गईं। उसे उन्होंने अपने घर पर रखा तथा कताई-पिंजाई आदि सिखाने के लिये शिक्षक नियुक्त कर दिया।

गांधीजी के एक रिश्तेदार श्री जयसुखलाल गांधी थे। उनकी सबसे छोटी कन्या मनु को उसकी माँ के निधन के बाद गांधीजी ने अपने आश्रम में बुला लिया। कस्तूरबा ने उसे अपनी पुत्री के समान रखा। आगे जाकर आगाखाँ महल में बा की अंतिम दिनों में मनु ने खूब सेवा की। बा के बाद गांधीजी ने उसे अपना लिया।

धारवाड़ के श्री करिअप्पा ने एक अपंग हरिजन लड़की से शादी की थी। गांधीजी ने दोनों को वर्षभर सेवाग्राम आश्रम में रखा। बाद में वे अपने प्रान्त में एक आश्रम चलाने लगे। १९४२ के आन्दोलन में उनका एक हाथ टूट गया।

विजयनगर की महारानी भी बार-बार आश्रम में आकर गांधीजी से सलाह करती थीं। वे एक भक्त बहन थीं।

प्यारेलालजी की तबियत खराब हो जाने के कारण उनकी छोटी बहन सुशीला नैयर, जो डाक्टरी परीक्षा उत्तीर्ण करके आई थीं, १९३७ के अन्त में आश्रम में आकर रहीं। उनके आने से सर्वप्रथम आखिरी निवास के एक कमरे में छोटा-सा दवाखाना प्रारम्भ हुआ। आश्रम के पाँच और गाँव के चार लोगों को उन्होंने इलाज करने का अच्छा शिक्षण दिया। प्रारम्भ में सुशीला आश्रम में स्थिर होकर नहीं रह सकीं। परन्तु १९४४ में जेल से छूटने पर वे स्थायी रूप से आश्रम में रहने लगीं। बाद में दवाखाना आखिरी निवास से बिड़ला भवन में गया। आगे जाकर दवाखाने का बहुत विकास हुआ।

१९३९-४० में कलकत्ता के श्री अमृतलाल चट्टोपाध्याय अपने बच्चों के साथ आश्रम में आये। उन्होंने जेलर की नौकरी छोड़ दी थी।

कुटुम्ब बड़ा होने से वे दिक्कत में थे। उनके चार बच्चों की जवाबदारी गांधीजी ने ले ली और धीरे-धीरे उनकी योग्य व्यवस्था हो गई। उनकी लड़की आभा का विवाह आगे जाकर कनु गांधी से हुआ। आभा ने अंत तक गांधीजी के पास रहकर उनकी सेवा की।

पुष्पा बहन गुजरात से आई थीं। आश्रम में रहकर उन्होंने संस्कार प्राप्त किये। बाद में खादी विद्यालय में शिक्षण लिया। बीस वर्ष की होने से पूर्व ही वे कस्तूरबा ट्रस्ट की ओर से चलनेवाले ग्राम सेविका विद्यालय की गृह माता बन गईं। कालान्तर में उन्होंने अपना स्वतंत्र आश्रम बनाया। श्री भणसाली भाई उनके आश्रम में जाकर रहे थे।

इस प्रकार कुछ प्रमुख स्त्री कार्यकर्ताओं का इतिहास लिखा है। अबला को शक्तिरूपेण बनाने का कौशल गांधीजी ने देश को दिखलाया।

० ० ०

२३. चराति चरतो भग:

(भाग्य चलनेवाले का साथ देना है)

मुखीं विद्या भुजीं वीर्य उदरीं प्रेम साठवे ।
पदीं सेवार्थ संचार वर्णरूपास त्या नमो ।।

– स्तवराज

(जिसके मुख में विद्या, भुजाओं में वीर्य और हृदय में प्रेम भरा है। जो सेवा के लिये घूमता रहता है, उस वर्णरूप को नमस्कार।)

गांधीजी जब वर्धा से सेवाग्राम आकर रहने लगे, तब वर्धा सेवाग्राम पक्की सड़क नहीं थी। वर्धा से टेकरी तक एक बैलगाड़ी का रास्ता था। उसे आश्रम से मिलाना कठिन था। बीच में लोगों के खेत थे। इसलिये सीधा रास्ता नहीं बनाया जा सका। जमनालालजी की परती जमीन में से कामचलाऊ रास्ता बनाया गया। आज भी वह टूटाफूटा

रास्ता बगीचा तथा गौशाला के दक्षिण से होकर आता हुआ दीखता है। १९३६ के अप्रैल में गांधीजी ४-५ दिन सेवाग्राम में रहकर स्वास्थ्य लाभ के लिये नंदी हिल्स गये। वहाँ से वे १५ जून को वापस वर्धा आये। तब तक सेवाग्राम तक का रास्ता तैयार हो गया था। इसे बनाने में मुख्यत: मुन्नालालजी की मेहनत लगी थी। आगे जाकर इसी रास्ते से सेवाग्राम वर्धा आना जाना प्रारम्भ हो गया। गांधीजी सेवाग्राम में रहते थे, फिर भी बीच-बीच में उन्हें वर्धा जाना पड़ता था। कांग्रेस कार्यसमिति की बैठकें वर्धा में होती थीं। शिक्षा-परिषद भी वर्धा में हुई। किसी आश्रमवासी के बहुत बीमार होने पर उसे वर्धा दवाखाना में इलाज के लिये भेजा जाता था। ऐसे अवसरों पर गांधीजी को वर्धा जाना पड़ता था। कभी जमनालालजी की बैलगाड़ी तो कभी तांगे में बैठकर वे वर्धा जाते थे। परंतु वे स्वयँ पैदल जाना ही पसंद करते थे। वे मानते थे कि पैदल जाने से कार्यकर्ताओं से बातें भी हो सकती थीं।

अगले दो चित्र १९३६ के हैं। एक चित्र में गांधीजी के दाहिनी ओर अण्णा साहब दास्ताने हैं तथा बाईं और भारतन् कुमारप्पा और प्यारेलालजी हैं। ग्रामवासी भी साथ में दिखते हैं। दूसरे चित्र में गांधीजी तांगे से उतर रहे हैं। तांगे में राजकुमारी अमृतकौर दीख रही हैं। वे तब

तक आश्रमवासी नहीं बनी थीं। वे बीच-बीच में आकर गांधीजी से मिलती थीं और उनके काम भी करती थीं।

आगे प्रान्तों में कांग्रेस की सरकारें बनने पर उसने किसानों से जमीन खरीद कर वर्धा सेवाग्राम पक्की सड़क बना दी। इससे देश-विदेश से गांधीजी को मिलने आने वाले लोगों को सुविधा हो गई। सड़क पर मोटरें दौड़ने लगीं। गाँव के लोगों को भी सुविधा हो गई।

जब रास्ता कच्चा था तब बरसात में कीचड़ हो जाता था तथा पैदल चलना या वाहन चलाना कठिन हो जाता था। पक्की सड़क बन जाने से बारहों महीने आना-जाना सरल हो गया। सुबह-शाम घूमने के लिये भी गांधीजी को बहुत मैदान मिल गया। वे घूमते समय कार्यकर्ताओं से आसानी से बातें कर सकते थे।

० ० ०

२४. बादशाह खान

मेरी आबरू से खेलनेवालों,
तेल पानी से मिल नहीं सकता।
आँधियाँ आयें या कि तूफाँ आयें –
मैं हिमालय हूँ, हिल नहीं सकता।।

सन् १९३६ में यानी गांधीजी के सेवाग्राम आकर रहने के प्रथम वर्ष में ही, पश्चिमोत्तर प्रान्त के लोकप्रिय नेता अब्दुल गफ्फार खान उर्फ बादशाह खान को गांधीजी ने आश्रम में आकर रहने का निमंत्रण दिया और वे आये भी। जेल से छूटने पर अँग्रेज सरकार ने उनको तथा उनके बड़े भाई डा. खान साहब को अपने प्रान्त में जाने की मनाही कर दी थी। श्री जमनालालजी ने उनको वर्धा आकर अपने पास रहने का निमंत्रण दिया था। इसलिये दोनों भाई वर्धा में जमनालालजी के बँगले में रहते थे। बादशाह खान वर्धा से सेवाग्राम आकर आश्रम में रहे। आदि निवास के एक कोने में उनको रखा गया। उनकी पुत्री मेहेरताज भी उनके साथ आश्रम आई थीं। खान साहब आश्रम जीवन से घुलमिल गये। सब्जी काटना, अनाज सफाई करना, झाड़ू लगाना आदि सभी काम वे खुद करते थे। गांधीजी ने खान साहब को माँस खाने की सुविधा देने की बात कही। परंतु खान साहब ने आश्रम की मर्यादा का ख्याल रखते हुए माँस खाना मंजूर नहीं किया।

आश्रम में कोई बीमार हो जाय तो गांधीजी स्वयँ उसकी सेवा करते थे। इस काम में भी खान साहब पीछे नहीं रहे। वे भी बहुत ध्यान से व प्रेम से बीमारों की सेवा करते थे। उनकी लड़की भी सबसे हिलमिलकर रहती थीं। खान साहब की सादगी बहुत ही प्रेरणास्पद थी। हल्के नीले रंग का पाजामा व कुर्ता – यही उनकी पोशाक थी। उनके हाथ में झाड़ू और फावड़ा आदि शोभायमान होते थे। गाँव के किसान से अधिक ऊँचा जीवन स्तर उन्हें पसन्द नहीं था।

१९३६ दिसम्बर में कांग्रेस अधिवेशन फैजपुर में होने वाला था। उसका अध्यक्ष पद खान साहब स्वीकारें, इसकी विनती करने के लिये पं. जवाहरलालजी और श्री राजेन्द्र प्रसाद सेवाग्राम आये थे। गांधीजी की उपस्थिति में दोनों ने खान साहब से निवेदन किया। खान साहब ने उत्तर दिया, 'यह मेरा काम नहीं है। मैं तो सिर्फ सेवक सिपाही हूँ (खिदमतगार सिपाही)। मुझे ऐसे कामों में रुचि नहीं है। आप लोग अन्य किसी को अध्यक्ष बनावें।' गांधीजी ने खान साहब के कथन का समर्थन किया। इतना ही नहीं, उन्होंने कहा कि जवाहरलालजी को ही अध्यक्षता करनी चाहिये। मजबूरी से जवाहरलालजी को यह स्वीकार करना पड़ा।

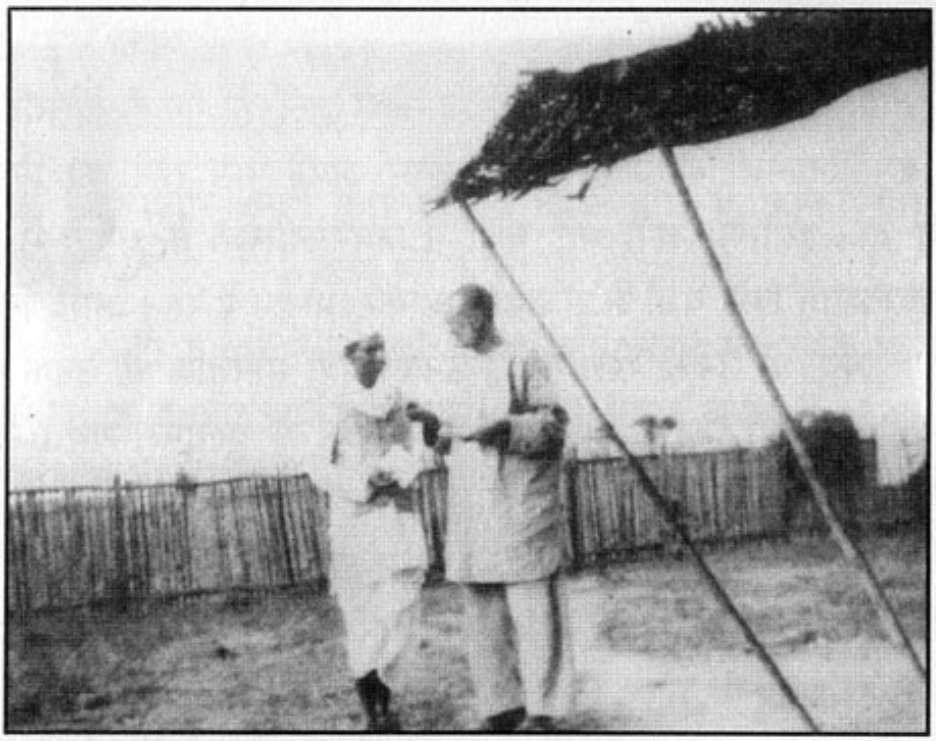

ऊपर का चित्र उसी अवसर का है। राजेन्द्र बाबू और बादशाह खान की बातचीत चल रही है।

ते हि नो दिवसा गता:।

(वे दिन भी बीत गये)

० ० ०

२५. ग्रहमाला का सूर्य

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ।।

– भागवत - ३-२१

(जिसे अपना परम ध्येय जानने की इच्छा हो, उसे शास्त्रों में प्रवीण तथा जिसे परब्रह्म का साक्षात्कार हो गया हो, ऐसे शांति के स्थल सद्गुरु की शरण लेनी चाहिए।)

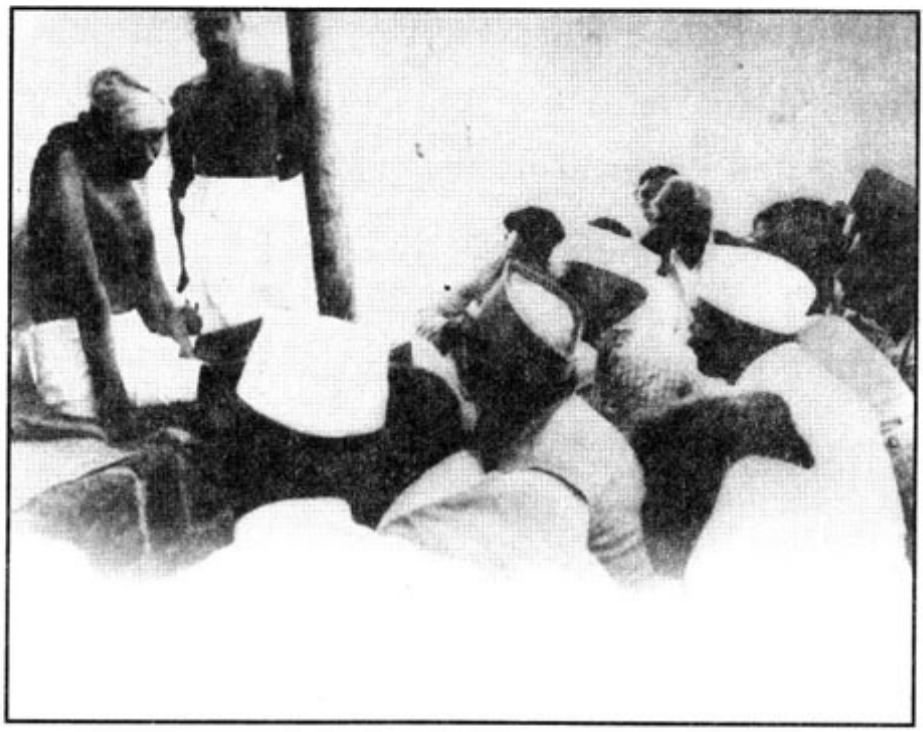

ऊपर के चित्र में गांधीजी के पास मार्गदर्शन हेतु आये खादी कार्यकर्ता दिख रहे हैं। श्रीकृष्णदास जाजू उन सबके मध्य में बैठे हैं। अँग्रेजी राज्य में गाँव के लोगों के समक्ष दो प्रमुख समस्याएँ थीं – अन्न और वस्त्र। देश गुलाम था, अतः खेती सुधार बहुत कठिन था। जमीन और किसान को कर्ज से मुक्ति दिलाने की कोई राह सूझती नहीं थी, परंतु वस्त्र की समस्या को हल करना इतना कठिन नहीं है, ऐसा गांधीजी को लगता था। उन्हें साक्षात्कार हुआ और उन्होंने चरखे के रूप में एक दिव्य

साधन देश के समक्ष पेश किया। चरखा खादी ग्रामोद्योग की ग्रहमाला का सूर्य था। उसके आसपास ग्रामोद्योग, गो-सेवा आदि रचनात्मक कार्यक्रम ग्रहों के समान घूमते रहेंगे, ऐसा गांधीजी ने प्रतिपादित किया। चरखे की खोज होने पर अखिल भारत चरखा संघ कांग्रेस के प्रस्ताव से अस्तित्व में आया। उसने सैकड़ों कार्यकर्ता प्रशिक्षित किये। श्रीकृष्णदास जाजू चरखा संघ के एक ज्येष्ठ व श्रेष्ठ कार्यकर्ता थे। वे पहले महाराष्ट्र चरखा संघ के व बाद में अखिल भारत चरखा संघ के मंत्री बने। कातने वालों को न्यूनतम मजदूरी देने के अनेक प्रयत्न चरखा संघ ने किये। खादी की पोशाक ही राष्ट्रीय पोशाक है, गांधीजी ने इसको आम जनता तक फैला दिया। चरखे ने सैकड़ों गाँव वालों को सम्मान का जीवन जीने का मौका दिया।

गांधीजी ने सेवाग्राम में आकर निवास बनाया तो उनके साथ ही चरखा भी आया ही। वर्धा जिले के पास में चाँदा जिले का सावली गाँव है, वहाँ खादी उत्पत्ति का बड़ा केन्द्र खड़ा हो गया। गांधीजी के भतीजे श्री छगलालभाई के पुत्र कृष्णदास गांधी उस केन्द्र के व्यवस्थापक थे। उनके बीमार होने के कारण गांधीजी ने उन्हें सेवाग्राम बुला लिया। उनकी तबियत ठीक होने पर उन्हें सेवाग्राम में ही रहने को कहा और यहाँ खादी कार्य विकसित करने की जिम्मेवारी दी। शीघ्र ही सेवाग्राम में खादी कार्य फैलने लगा। कस्तूरबा दवाखाने के पास खादी कार्यकर्ता निवास व विद्यार्थी छात्रावास खड़े किये गये। नवयुवक खादी काम सीखकर तैयार होने लगे। प्रारम्भ में श्री शंकरलाल बैंकर अखिल भारत चरखा संघ के मंत्री थे। उनका प्रधान कार्यालय अहमादाबाद में था। बैंकर के बीमार पड़ने पर जाजूजी चरखा संघ के मंत्री बने। इसलिये चरखा संघ का प्रधान कार्यालय अहमदाबाद से वर्धा लाया और वहाँ से सेवाग्राम।

कृष्णदास भाई के माता-पिता गुजरात में थे। गांधीजी ने १९४० के आसपास उन्हें भी सेवाग्राम बुला लिया। तब से वे दोनों सेवाग्राम ही रहे।

१९४२ के सत्याग्रह में जेल जाने के बाद १९४४ के मध्य में गांधीजी जेल से छूटकर सेवाग्राम आये। उस अवधि में पुलिस ने अनेक खादी केन्द्रों को जला दिया था। इससे गरीब कत्तिन बुनकरों का काफी नुकसान हुआ। इससे गांधीजी चिंतित थे। खादी की दिशा क्या हो यह वे सोचने लगे। जाजूजी ने गांधीजी से सात दिन एकान्त में चर्चा करने का समय मांगा। यह चर्चा बाद में 'खादी का नवसंस्करण' नाम से प्रकाशित हुई। गांधीजी की राय थी कि व्यापारी पद्धति से खादी का प्रचार करने की बजाय खादी को ग्रामाभिमुख बनाया जाय। वह अपने पाँव पर खड़ी हो। उस दृष्टि से प्रयास आरम्भ भी हुए, परंतु दु:ख की बात है कि आज तक यह विचार प्रत्यक्ष अमल में पूरा नहीं आ सका।

० ० ०

२६. शंका समाधान

निंदास्तुति ज्यासी समान पैं झाली ।
त्याची स्थिति आली समाधिसी ।।
शत्रुमित्र ज्यासी सम समानत्वें ।
तोचि पैं देवातें आवडला ।।

– नामदेव

(जिसके मन में निंदा-स्तुति समान हो गई हैं, उसकी स्थिति समाधि जैसी होती है। जो शत्रु-मित्र को समान मानता है, वह ईश्वर को प्रिय होता है।)

गांधीजी स्वयँ को कोई विद्वान या पंडित नहीं मानते थे, परंतु विद्वान लोगों को अपनी ओर खींचने का आकर्षण उनमें अवश्य था। १८५७ में भारतीयों ने सशस्त्र क्रान्ति करके अँग्रेजों को देश से भगा देने का असफल प्रयत्न किया था। उसके बाद अँग्रेजी शिक्षा लेने वाले मध्यमवर्गीय लोगों ने विचार किया और अगले ९० वर्षों में इन्हीं लोगों ने

देश में संगठन करके आन्दोलन चला कर अँग्रेजों को देश छोड़ने को बाध्य कर दिया।

दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के नये शस्त्र से पुरुषार्थ करके कर्मवीर गांधी १९१५ में जब भारत लौटे तो सर्वप्रथम देश के सुशिक्षित विद्वान लोगों ने ही उन्हें पहचाना और अपनी-अपनी राजनैतिक या सामाजिक संस्थाओं में उन्हें लाने का प्रयत्न होने लगा। विद्वानों में देशाभिमान था परंतु यह नहीं सूझता था कि किया क्या जाये? कुछ लोगों ने गांधीजी के विचारों का मखौल भी उड़ाया। कुछ को पहले शंका हुई परंतु गांधीजी के सम्पर्क में आने पर उनकी शंकाएँ धीरे-धीरे दूर होने लगीं और वे उनके कट्टर अनुयायी बन गये।

आचार्य काकासाहब कालेलकर और गांधीजी की सर्वप्रथम मुलाकात शांति निकेतन में हुई। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की संस्था में काकासाहब शिक्षक थे। गांधीजी से प्रथम भेंट में ही उन्होंने उनसे इतने प्रश्न पूछे कि मोक्ष से लेकर शौच के लिये बैठने तक का एक भी प्रश्न उन्होंने छोड़ा नहीं। बाद में जब गांधीजी ने उन्हें अपने नवनिर्मित आश्रम में आने का निमंत्रण दिया तो काकासाहब कहने लगे 'मैं ठहरा आध्यात्मिक साधना वाला व्यक्ति। हाल ही में मैं हिमालय से आया हूँ। परंतु आपकी अहिंसा से देश को स्वतंत्रता मिल सकेगी ऐसा मुझे बिलकुल नहीं लगता। अहिंसा के बारे में मुझे अत्यंत आदर है परंतु स्वराज्य प्राप्ति के लिये अहिंसा का बंधन मैं मानने वाला नहीं। ऐसे व्यक्ति को आप अपने आश्रम में लेंगे क्या?' इस पर गांधीजी बोले 'आपके विचार मैं समझ सकता हूँ। संसार आज आपकी तरफ है, मैं अल्पमत में हूँ। आपको अगर आश्रम में प्रवेश नहीं दूंगा तो मुझे लोग मिलेंगे कहाँ से? आप आश्रम में आकर रहिये। मेरे विचार तथा कार्यपद्धति समझ लीजिये। आपको आश्रम जीवन मान्य हो तो जितने दिन चाहो उतने दिन रहो। मैं आपके पंख नहीं कतरना चाहता। मेरी बात अगर आपको नहीं जँची तो कभी भी आश्रम छोड़ देना या चले जाना। मैं तुम्हें किसी प्रकार के बंधन में नहीं डालना चाहता।' धीरे-धीरे काका

साहब आश्रम में जाने लगे। कुछ समय बाद वे वहाँ स्थायी रूप से रहने लगे। गांधीजी के साथ रहने से उनमें परिवर्तन आता गया। उन्हें अहिंसा का साक्षात्कार हुआ और वे 'दीक्षित' हो गये।

काकासाहब ने अपने घनिष्ठ मित्र आचार्य कृपालानी को भी तार देकर बुला लिया। वे भी सर्वप्रथम अहिंसा के बारे में शंका रखते थे। परंतु आगे जाकर उनका भी अहिंसा पर विश्वास बैठ गया।

कृपलानी और काकासाहब दोनों ही एक के बाद एक गुजरात विद्यापीठ के आचार्य बने। १९३०-३३ के नमक सत्याग्रह के बाद काकासाहब भी गुजरात छोड़कर वर्धा आ गये। गांधीजी ने उन्हें राष्ट्रभाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी के प्रचार का काम सौंपा। वह काम उन्होंने बहुत अच्छे प्रकार से किया। जब गांधीजी वर्धा से सेवाग्राम रहने आ गये तो काकासाहब वर्धा में महिला आश्रम के सामने काकावाड़ी में जाकर रहने लगे। वहाँ से वे समय-समय पर गांधीजी से मिलने आते रहते थे। नीचे का चित्र ऐसे ही एक प्रसंग का है।

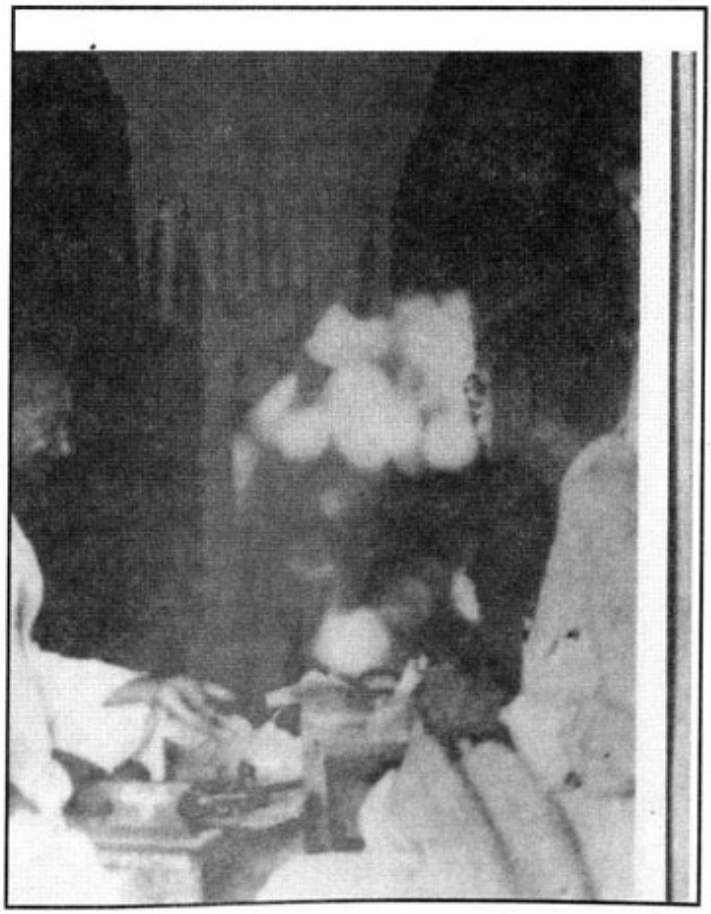

काकासाहब एक जन्मजात शिक्षक तथा साहित्यिक हैं। कृपलानीजी एक राजनीतिज्ञ हैं। उन्होंने गांधीजी से कहा था, 'अहिंसा से स्वराज्य मिल सकेगा, ऐसा आप कहते हैं, परंतु ऐसा एक भी उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता। मैं इतिहास का प्रोफेसर हूँ। मेरे विद्यार्थियों को मैं क्या सिखाऊँ?' इस पर गांधीजी ने उन्हें उत्तर दिया, 'हाँ, तुम इतिहास के प्रोफेसर हो, पर मैं इतिहास का निर्माण करने वाला हूँ। जो इतिहास में नहीं है, ऐसी कोई नयी राह मनुष्य न ढूँढे ऐसा तो इतिहास नहीं कहता। मैं संसार को दिखा देना चाहता हूँ कि पवित्रतम साधनों से व्यक्ति और देश स्वतंत्र हो सकते हैं।' आगे जाकर यही कृपलानी प्रोफेसर की नौकरी छोड़कर गांधीजी के पक्के अनुयायी बन गये। सत्याग्रह करके अनेक बार जेल भी गये।

प्रारंभ में सरदार पटेल भी गांधीजी के विचारों का मजाक उड़ाते थे। बाद में वे गांधीजी के अनुयायी बन गये। विद्वानों को अनेक शंकाएँ होती हैं, परंतु प्रत्यक्ष आचरण करते रहने से शंकाएँ निर्मूल होती जाती हैं तथा जीवन सत्य का साक्षात्कार होता है।

० ० ०

२७. अहिंसा परमो धर्मः

मोक्षेण अरसिकेन् किम् ।।

– श्री शांति देवाचार्य (एक बौद्ध अर्हत्)

(असरिक मोक्ष ले कर क्या करूं?)

सन् १९३३ में एक जापानी साधु निचिदात्सु फुजीई वर्धा में गांधीजी से मिले थे। कुछ दिन वे गांधीजी के साथ रहे। स्वदेश वापस जाने पर उन्होंने अपने दो शिष्य गांधीजी के पास भेजे। एक का नाम था मारुयामा सान तथा दूसरे का साटो। सेवाग्राम में दोनों को भारतीय नाम दिये गये, आनन्द व केशव। भिक्षु आनन्द को बौद्ध मंदिरों के बारे में

कुछ काम करने थे, अतः वे ज्यादा समय सेवाग्राम में नहीं रह सके। भिक्षु केशव टिके रहे। वे आश्रम के सभी नियमों का सावधानी से पालन करते थे। हर समय काम में लगे रहते थे। प्रतिदिन सबेरे व शाम को प्रार्थना से पहले अपना ढोल-पंखा हाथ में लेकर उसे बजाते हुए 'नम्यों हो रेंगे क्यों।' मंत्र जोर से बोलते हुए रास्ते पर घूमते थे। एक बार वे अपना भजन करते हुए रास्ते से जा रहे थे, तो एक पागल आदमी ने उन पर हमला किया तथा उन्हें खूब मारा। परंतु मजबूत शरीर वाले होने पर भी भिक्षु केशव ने अपना बचाव नहीं किया। वे तो अपना भजन गाते रहे। सड़क पर चलने वाले अन्य लोग दौड़कर उनके पास आये, उन्होंने उस पागल आदमी से केशव भाई को छुड़ाया।

दूसरा विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ, उसमें जापान भी शामिल हुआ और उसने अँग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष का ऐलान किया। तुरंत ही भारत सरकार ने केशव को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया। युद्ध समाप्ति पर सरकार ने केशव को अपने देश भेज दिया। भिक्षु केशव की गांधी-निष्ठा आजन्म बनी रही। जब उन्होंने यह सुना कि गांधीजी की हत्या हो गई है तो वे बेहोश हो कर गिर पड़े। होश आने पर उन्होंने मौन ले लिया।

ऊपर दो चित्र दिये गये हैं। सेवाग्राम में गांधीजी से मिलने के लिये चीनी लोग भी आते थे। एक चित्र में गांधीजी एक चीनी गुरु से बात कर रहे हैं। दूसरे चित्र में चीनी बौद्ध मिशन के सदस्य बापू कुटी से बाहर निकलते हुए दिख रहे हैं। साथ में महादेव भाई भी हैं। भगवान बुद्ध ने अहिंसा का महान आदर्श अपने शिष्यों के समक्ष रखा था। अहिंसा के बिना चित्त शुद्ध और शांत नहीं होता। निर्वाण के लिये चित्त का पूरा मेल धुलना आवश्यक होता है। ये सभी भिक्षु अपने धर्म पर पूरी निष्ठा रखने वाले थे, परंतु उन्हीं दिनों चीन और जापान में युद्ध शुरू हो गया था। जापान चीन के प्रदेश को जीतता जा रहा था। परंतु मुँह से कहता था कि 'हमें चीन की संस्कृति का विकास करके उनके साथ बंधु भाव कायम करना है।' जापानी भिक्षु अपने देश की भूमिका पर विश्वास रखते थे। भिक्षु केशव भी खुले रूप से कहता फिरता था कि, 'जापान चीन की सेवा ही कर रहा है, वह तो चीन को सुधारना चाहता है।' चीनी साधुओं को अपने देश में शांति हो यह चाह थी, साथ ही वे जापान का विरोध करना भी अपना कर्तव्य मानते थे। भगवान बुद्ध के उपदेशों के अनुरूप इस परिस्थिति में से मार्ग कैसे निकाला जाये, इसीलिये वे लोग गांधीजी की सलाह लेने आये थे। चीन का सेनापति

मार्शल च्योंग काई शेक जापान से बहादुरी से लड़ रहा था। जनता भी उसके साथ थी। इस परिस्थिति में गांधीजी ने चीन के लिये कोई भी संदेश देने से इंकार कर दिया। परंतु अहिंसा के साधन के बारे में सामान्य चर्चा चीनी प्रतिनिधियों से की।

जीवन एक कसौटी है। धर्म की सीख अगर प्रत्यक्ष जीवन में नहीं उतरती है तो मानसिक विकृति और नैतिक अध:पतन होने का अंदेशा रहता है। ऐसी कसौटी के समय में आध्यात्मिक आदर्श पर पूरी निष्ठा होनी चाहिये। गांधीजी की निष्ठा पक्की थी। इसीलिये उनका जीवन अंत तक उज्ज्वल रहा है।

० ० ०

२८. आश्रम में टेलीफोन

आधीं कर्माचा प्रसंग । कर्म केलें पाहिजे सांग ।
कदाचित पडलें व्यंग । तरी प्रत्यवाय घडे ।।

– दासबोध ११-९-१

(कर्म करने का अवसर प्राप्त हो तो पूरी तरह से शुद्ध कर्म करें। अगर उसमें त्रुटि रही तो दिक्कत आ सकती है।)

गांधीजी गाँव में आकर रहे, क्योंकि वे ग्रामीण जीवन से एकरूप होना चाहते थे। परंतु गाँव की सेवा करते समय उनके दोष अपने में आने देना उचित नहीं। गाँव के लोग अज्ञानी होते हैं, अस्वच्छ होते हैं, आलसी भी होते है और आपस में ईर्ष्या-द्वेष भी होता ही है। ये सभी दोष अपने जीवन में नहीं आने देना चाहिए। अपना जीवन सादगीपूर्ण, कम खर्चीला तथा शरीरश्रम पर आधारित हो, ऐसा गांधीजी का प्रयत्न रहता था। उन्होंने आश्रम में बिजली नहीं आने दी। घर में बिजली के लैंप या कुँए पर बिजली की मोटर नहीं लगवाई। कुँए से पानी चमड़े की चड़स (मोट) के द्वारा निकाला जाता था। एक बार मध्य प्रान्त के स्वास्थ्य विभाग के मुख्य

अधिकारी श्री हुकूमतराय आश्रम देखने आये थे। उन्होंने देखा कि आदिनिवास के कुँए पर पानी की मोट (चड़स) की रस्सी के आने जाने से मिट्टी-गोबर आदि कुँए में जाकर पानी को अस्वच्छ कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि यहाँ पर पर्शियन चक्र (रहंट) लगा लेने से इस स्थिति में सुधार होगा। रहंट लगाने का खर्च उन्होंने स्वयँ दिया। बाद में रामदास भाई गुलाटी ने कुँए पर पक्की टंकी बनाई और उसके दरवाजे पर एक जाली लगा दी। इससे मक्खी-मच्छर अंदर नहीं जा सकते थे।

आगे चलकर आश्रम में और भी एक 'सुधार' हुआ। तत्कालीन वायसराय लिनलिथगो का गांधीजी से निकट सम्बन्ध बढ़ रहा था। गांधीजी के नवीन विचार उन्हें मालूम होते रहने चाहिए इसलिए उन्होंने 'हरिजन' पत्र नियमित मिलने की व्यवस्था की। फिर भी उन्हें लगता था कि जरूरत पड़ने पर गांधीजी से तुरंत सम्पर्क होना चाहिये इसलिए उन्होंने आग्रह किया कि आश्रम में टेलीफोन होना चाहिये। इस बारे में गांधीजी किसी अन्य की सलाह मानने वाले नहीं थे, पर वायसराय की बात को टालना कठिन था। उन्होंने सम्मति दी और आश्रम में टेलीफोन आया।

सामने का चित्र, गांधीजी टेलीफोन पर बात कर रहे हैं, उस समय लिया गया है। देश के राजनैतिक नेता बनने के बाद उसकी जवाबदारी भी पूरी निभाने के लिये गांधीजी को आधुनिक यंत्रों का कुछ न कुछ उपयोग मजबूरन करना ही पड़ता था। लिखने के लिये पहले वे बोरू की कलम काम में लेते थे। परंतु गांधीजी के अविरल लेखन का भार उस कलम से सहन नहीं होता था। अत: मजबूर होकर उन्हें पुन: फाउण्टेन पेन का उपयोग प्रारम्भ करना पड़ा। ऐसे प्रयोग व प्रयास वे सतत करते रहते थे।

० ० ०

२९. कसौटी के प्रसंग

सांकडीमध्यें वर्तों जाणें । उपाधीमध्यें मिळों जाणें ।

अलिप्तपणें राखों जाणें । आपणांसी ।। – दासबोध

(जो दिक्कत में किस तरह व्यवहार करना है, यह जानता है। सब उपाधियों के रहते हुए जो अपने को सबसे अलिप्त रखता है, वह भक्त है।)

गांधीजी गाँव में रहते थे मगर वे देश के नेता भी थे, अत: उन्हें एकान्त व शांति दुर्लभ थी। आश्रम में विविध प्रान्तों से अलग-अलग भाषा बोलने वाले विभिन्न स्तर के व शिक्षण स्तर के व्यक्ति आकर रहते थे। इस विविधताभरे परिवार में बीच-बीच में कुछ मतभेद होना स्वाभाविक था। गांधीजी सबको सँभाल लेते थे। सत्पुरुष के पास गुनहगार या पागल लोग भी आते रहते हैं क्योंकि उन्हें अपने पापों से मुक्ति चाहिये। अपना मानसिक स्वास्थ्य सुधारना होता है। गांधीजी बिना भेदभाव के प्रेम से सबकी सेवा करते थे। परंतु गांधीजी को धक्का देने वाले प्रसंग भी कभी-कभी देखने में आते थे।

सरदार पृथ्वी सिंह नामक क्रान्तिकारी के लिये गांधीजी ने सरकार से बहुत लिखा पढ़ी की। पुलिस से बचने के लिये पृथ्वी सिंह चलती रेल से कूद कर भाग गये थे। वे छद्म वेश धारण कर रहते थे। वे गांधीजी की सलाह मानकर सरकार के समक्ष उपस्थित हो गये। सरकार ने उन्हें पंजाब की जेल में रखा। उन्होंने घोषणा की कि वे अब अहिंसा में मानने वाले हो गये हैं। एक वर्ष के जेलवास के बाद गांधीजी की प्रार्थना पर सरकार ने उनका तबादला मध्य प्रान्त में कर दिया। मध्य प्रान्त में कांग्रेस की सरकार थी। उसने पृथ्वी सिंह को मुक्त कर के गांधीजी के सुपुर्द कर दिया। वे कुछ दिन आश्रम में रहे। फिर कुछ समय देश में इधर-उधर घूमे। जब दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हुआ तो किसी कारण से उन्होंने गांधीजी से मतभेद प्रकट किया और आश्रम छोड़ दिया।

सुरेन्द्रनाथ नामक एक बंगाली क्रान्तिकारी युवक को भी गुप्त पुलिस की तेज नजरों से गांधीजी ने बचाया। उसने सरकार से वायदा किया कि वह आश्रम में रहेगा, अत: वह छोड़ दिया गया। वह गांधीजी की शरण में आया, उसे आश्रम में रख लिया गया। यह १९४० के करीब की घटना है। एक वर्ष वह आश्रम में रहा। बाद में कुछ गड़बड़ करके किसी प्रकार की सूचना न देकर वह आश्रम छोड़कर चला गया। एक और बंगाली युवक को गांधीजी ने पुलिस से छुड़ाया था, यह घटना १९३८ की थी।

इस प्रकार दीन, दु:खी विपत्ति में से रोगी या भयभीत सभी तरह के लोगों की मदद करने के साथ ही, गाँव की जनता का उद्धार कैसे होगा इसका सपना देखते हुए गांधीजी अपनी तपोमय सेवा से जीवन उज्ज्वल कर रहे थे।

आशादेवी आर्यनायकम् को आनंद नाम का एक छोटा बालक था। उससे बड़ी एक बहन भी थी। दोनों बच्चों पर उन्हें असीम प्रेम था। विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने के बाद की यह घटना (१९ दिसम्बर १९३९) है। आश्रमवासी लोग बन के खेत में कुँए के पास हुरड़ापार्टी मना रहे थे। श्री

जमनालालजी भी उसमें थे। आनन्द भी हुरड़ा खा रहा था। एकाएक वह बेहोश हो गया। सभी लोग घबरा गये। उसके होश में आने के कोई लक्षण न देखकर गांधीजी को बुलाया गया।

गांधीजी ने एक अमरीकन पत्रकार को मुलाकात का समय दिया हुआ था। उस पत्रकार को वे कुटिया के अंदर बुलाने ही वाले थे तभी यह बुलावा आया। उस पत्रकार को थोड़ी देर ठहरने के लिए महादेव भाई को बताकर गांधीजी तेजी से आनन्द को देखने गये। आनन्द आशादेवी की गोद में था। आनन्द के पिता (आर्यनायकम्जी) बाहरगाँव गये हुए थे। वह बच्चा होश में आया ही नहीं। बाद में पता चला कि उसने पिपरमेंट की गोलियाँ समझ कर कुनैन की ६० गोलियाँ खा ली थी। गांधीजी व डा. सुशीला नैयर के अनेक प्रयत्नों से भी आनन्द को बचाया नहीं जा सका। वह मृत्यु को प्राप्त हुआ।

गांधीजी को अपना मन शांत रखकर आशादेवी को सांत्वना देनी पड़ी। आश्रम में मृत्यु की यह पहली ही घटना थी। उस कठिन परिस्थिति में भी गांधीजी उस अमरीकन पत्रकार को भूले नहीं। अपना काम पूरा करके वे तुरंत वापस आ गये और उस पत्रकार को बुलाकर उसके प्रश्नों के उत्तर देने लगे। इस दु:खदायी घटना का किंचित भी परिणाम उनके चेहरे पर नहीं दिखता था। पत्रकार ने संसार की परिस्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे। इस पर गांधीजी बोले, 'मैं तो कुँए के मेंढक जैसा हूँ। मेरे लिये तो सारा संसार भारत में और सेवाग्राम में समाया है। मेरे साथियों में से कुछ लोग संसार की घटनाओं का जितना अध्ययन करते हैं वैसा मैं नहीं करता।'

इसी तरह से उन्होंने पत्रकार के प्रश्नों के उत्तर दिये। आखिर में उन्होंने थोड़ा विनोद भी किया। पत्रकार ने देखा कि आश्रम का वातावरण दु:खी व उदास-सा था, फिर भी गांधीजी खुद भी हँस रहे थे और पत्रकार को भी हँसा रहे थे।

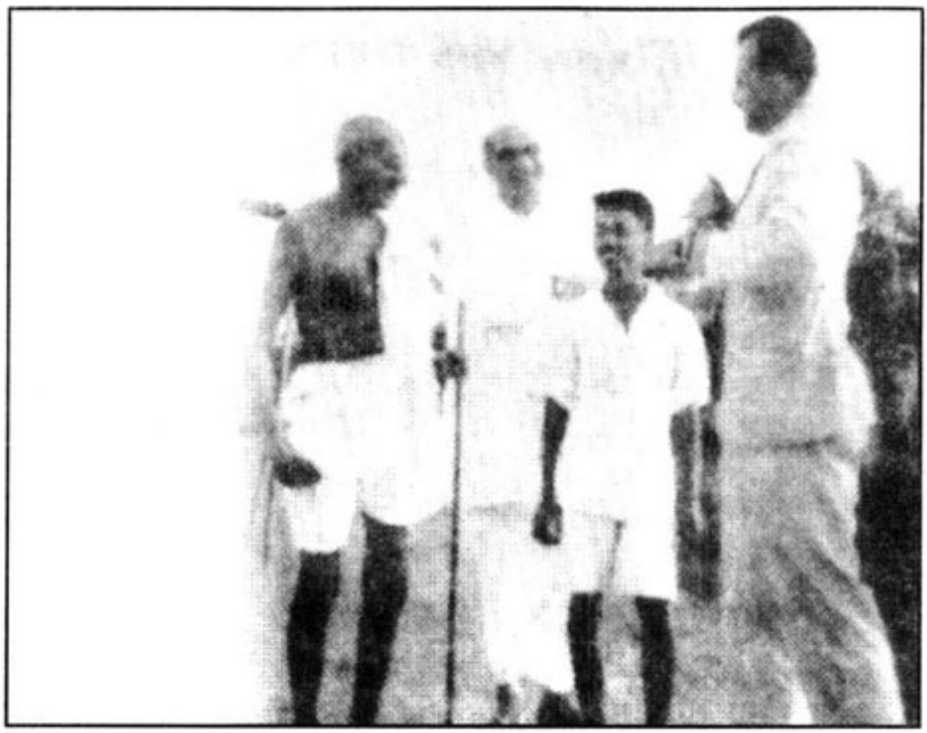

ऊपर के चित्र में गांधीजी पत्रकार से बातचीत कर रहे हैं।

० ० ०

३०. संत–समागम

आधींच शिकोनि शिकवी । तोचि पावे श्रेष्ठ पदवी ।
गुंतल्या लोकांस उगवी । विवेकबळें ।।

– दासबोध

(जो पहले सीख लेता है, फिर सिखलाता है, वही श्रेष्ठ कहलाता है। अपने विवेक से वह संसार में लोगों का उद्धार करता है।)

सेवाग्राम आने के करीब एक महीने बाद ही नागपुर के श्री बाबूराव हरकरे की सिफारिश पर गांधीजी ने विदर्भ के राष्ट्रीय संत की प्रसिद्धि पाये हुए श्री तुकड़ोजी महाराज को एक महीने के लिये सेवाग्राम आश्रम में रहने के लिये बुला लिया। तब तक सिर्फ आदि निवास ही बन पया था। उसके एक कोने में गांधीजी रहते थे और उनके मेहमान भी उसी निवास में रहते थे। तुकड़ोजी महाराज के साथ उनका सेवक नारायण भी था। वह

भी इसी कुटी में रहा। तुकड़ोजी महाराज को सूत कातना आता था, परंतु पींजना और पौनी बनाना नहीं आता था। ये दोनों कलाएँ उन्होंने आश्रम में रहकर सीख ली। यहाँ से अपने आश्रम मोझरी में जाने पर उन्होंने ये विद्याएँ अपने शिष्यों को सिखला दी। गांधीजी के १८ रचनात्मक कार्यक्रमों में से अधिकांश उन्होंने अपने यहाँ प्रारम्भ कर दिये। खेती, गौशाला, छात्रावास, खादी उत्पादन, औषधालय, बुनियादी तालीम आदि अनेक प्रवृत्तियाँ अगले १८ वर्षों में वहाँ खड़ी की। जब वे सेवाग्राम में थे, तो प्रतिदिन प्रार्थना के बाद भजन करते थे। सुनने के लिये गाँवों से सैकड़ों लोग आते थे।

ऊपर के चित्र में गांधीजी आदि निवास के बरामदे में बैठकर एक कार्यकर्ता से बातचीत कर रहे हैं। पास में बैठकर प्यारेलालजी उसे लिख रहे हैं। उनके पास में तुकड़ोजी महाराज बैठे हैं।

सरदार वल्लभ भाई गांधीजी के आश्रम परिवार को कभी-कभी पिंजरापोल कहते थे। यहाँ विभिन्न प्रकार के लोग रहते थे। ऐसों में एक थे श्री भणसाली। वे इंग्लैंड में पढ़कर आये थे और कुछ समय तक अहमदाबाद के गुजरात विद्यापीठ में प्राध्यापक भी रहे थे। फिर भी वे

अत्यंत धार्मिक वृत्ति के थे। जैन पद्धति से उन्होंने चालीस तथा पचास दिनों के उपवास किये थे। जेल भी गये थे। बाद में उन्हें वैराग्य हो गया और वे करीब-करीब नंगे ही घूमने-फिरने लगे। जंगलों में भी भटके। अपना मौन पक्का करने के लिये उन्होंने अपने ओठ पीतल की कड़ी से सिलवा लिये थे। ऐसे विलक्षण व्यक्ति को भी गांधीजी ने अपने आश्रम में रख लिया। उन्होंने धीरे-धीरे प्रयास से भणसाली भाई की विकृतियाँ दूर की। ओठों की सिलाई निकलवाई और उनकी कर्मयोग में रुचि उत्पन्न कराई। बाद में वे रोज १७ घंटे काम करने लगे। वे लोगों के बीच आने पर कपड़े भी पहनने लगे। फिर भी उनका वैराग्य कायम था। आगे जाकर जब गांधीजी आगा खान महल में कैद थे, तब सेवाग्राम के पास के जिले में चिमूर-आष्टी क्षेत्र में हुए अत्याचारों के विरोध में उन्होंने ६३ दिन के उपवास किये और सरकार से न्याय प्राप्त किया।

श्री विनोबा भावे के छोटे भाई बालकोबा साबरमती आश्रम में थे। बाद में उन्हें क्षय रोग हो गया। १९३६ में वे सेवाग्राम के पास के गाँव वरुड में रहने आये। मीरा बहन ने वहाँ एक झोंपड़ी बाँध ली थी। उसी में वे रहने लगे। उनकी सेवा की व्यवस्था गांधीजी ने कर दी। रोज घूमते समय वे बालकोबा से मिलते थे। उनके आहार-निद्रा-औषधि आदि की पूरी जानकारी लेते थे तथा उपयुक्त इलाज सुझाते थे। १९३१ में बालकोबा बीमार पड़ गये थे। बीमारी से वे बहुत कमजोर हो गये और उससे उनके फेफड़ों में क्षय की बीमारी हो गयी थी। वे अनेक स्थानों पर गये। आखिर १९४५ तक वे सेवाग्राम ही रहे। यहाँ भी वे बीच-बीच में अपना निवास बदलते रहते थे। १९४५ के बाद पूना में डाक्टर दीनशा मेहता के पास छह महीने रहने पर उनकी बीमारी ठीक हुई। उसके बाद वे पूना के पास उरुलीकांचन गाँव में रहे। वहाँ रहकर उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा का सुन्दर केन्द्र खड़ा किया।

संत तुकाराम का निम्न कथन गांधीजी पर ठीक बैठता है –

थोरीव सांडीली आपुली परीसें । नेणें शिवों कैसें लोखंडासी ।।
जगाच्या कल्याणा संतांच्या विभूती । देह कष्टवीती उपकारें ।।

(जिस तरह अपना बड़प्पन भूलकर पारस पत्थर लोहे को अपने स्पर्श से सोना बना देता है। उसी तरह संसार के कल्याण के लिये महात्मा लोग देह से कष्ट सहन कर सबका उपकार करते हैं।)

० ० ०

३१. किशोरलाल भाई

आपुला तो देह आम्हां उपेक्षित। कोठें जाऊं हित सांगों कोणा ।।
कोण नाहीं दक्ष करितां संसार । आम्हीं हा विचार वमन केला ।।

– तुकाराम

(हम हमारी देह की उपेक्षा करते हैं। अब किसी से उसके हित के बारे में क्या कहें? घर-गृहस्थी चलाने में कौन निपुण नहीं है? हमने तो वैसा करने का विचार उल्टी जैसा त्याज्य माना है।)

गांधीजी सेवाग्राम आये उस समय किशोरलाल भाई वर्धा में रहते थे। उनका जन्म स्थान अकोला था। कुछ समय उन्होंने गुजरात विद्यापीठ के कुलसचिव का काम किया था। वे जेल भी गये थे। प्रारम्भ से ही उनकी वृत्ति विरक्ति की थी। तथा वे परसेवा में लगना चाहते थे। ईश्वर दर्शन की तीव्र इच्छा से एक बार उन्होंने गृह त्याग कर दिया था। एकान्त में जाकर रहे। वहाँ केदारनाथजी ने उनसे सम्पर्क रखा तथा उनके उपदेश से किशोरलाल भाई को शांति उपलब्ध हुई। अत: वे केदारनाथजी यानी नाथजी को अपना गुरु मानते थे। किशोरलाल भाई ने अनेक विचार-प्रधान पुस्तकें लिखी हैं। उन्हें दमे की बीमारी थी। उम्र बढ़ने के साथ दमे की तकलीफ भी बढ़ती गई। इसलिये उनसे लेखन व वैचारिक सलाह का ज्यादा काम नहीं हो सकता था। अपनी कमजोर शारीरिक स्थिति तथा असह्य वेदना होने पर भी उनकी मन की शांति और समतोल वृत्ति हमेशा कायम रही। वे विवाहित थे फिर भी अपनी पत्नी श्रीमती गोमती बहन के सहयोग से अनेक वर्षों पहले से ब्रह्मचर्य-व्रत का

पालन करते आये थे। उन्होंने कभी अपने शरीर सुख की ओर ध्यान नहीं दिया। संसार के सारे आकर्षण छोड़कर गांधीजी के कामों में वर्षों योगदान देते रहे। उनकी पत्नी का भी उन्हें पूरा सहयोग मिला।

जब देश में सविनय कानून भंग का वातावरण बनने लगा तब महादेव देसाई की तबियत बहुत बिगड़ गई। उन्हें उच्च रक्तचाप हो गया। अत: गांधीजी ने उन्हें कुछ समय के लिये शिमला में राजकुमारी अमृत कौर के पास आराम के लिये भेज दिया। आगे १९४० में जब प्यारेलालजी जेल गये तो उनके स्थान पर अपने पत्र-व्यवहार में मदद करने के लिये गांधीजी ने किशोरलाल भाई को सेवाग्राम बुला लिया था। पति-पत्नी दोनों आये। प्रारम्भ में उनकी रहने की व्यवस्था चरखा संघ के मकानों में की गई। बाद में उनके लिये आश्रम में स्वतंत्र घर बनाया गया।

पिछले चित्र में गांधीजी धनुष तकली पर सूत कात रहे हैं। पास में बैठकर किशोरलाल भाई लिख रहे हैं। वे गांधीजी का पत्र-व्यवहार देखते थे। जब गांधी सेवा संघ (१९२३ में) बना, तब प्रारम्भ में जमनालालजी उसके अध्यक्ष थे। कालांतर में उन्हें अपने जीवन और संघ के उद्देश्यों में विसंगति दिखने लगी, अत: उन्होंने अध्यक्ष पद छोड़ दिया। उनके स्थान पर श्रेष्ठ, चरित्रवान तथा गांधी तत्वज्ञान की पक्की बुनियाद वाले किशोरलाल भाई की नियुक्ति हुई। पाँच वर्ष तक उन्होंने संघ का अध्यक्ष पद सँभाला। उन्होंने संघ की शोभा बढ़ाई। बाद में गांधीजी से उनके मतभेद हुए अत: उन्होंने १९४० के मलिकांदा सम्मेलन में अध्यक्ष पद से त्याग पत्र दे दिया। उसके बाद गांधीजी ने संघ की प्रवृत्तियाँ सीमित कर उसका पुनर्गठन किया।

० ० ०

३२. महिला आश्रम

झाडूं संतांचे मारग । आडरानें भरलें जग ।
उच्छिष्टाचा भाग । शेष उरलें तें सेवूं ।।

– तुकाराम

(संतों का रास्ता मैं साफ करूँ। संसार विकट है। अत: जो भी बचा-खुचा जूठन है उसी का मैं सेवन करता हूँ।)

वर्धा में जमनालालजी का पैतृक घर था। उनका मालगुजारी तथा जिनिंग का धंधा भी वहीं से चलता था। इसलिये वे अधिकतर वर्धा रहते थे। उन्हें जीवन के प्रारम्भ में ही देश सेवा के संस्कार मिले। वह जमाना ही ऐसा था। जमनालालजी सत्यनिष्ठ थे। अपने व्यापार में भी वे प्रामाणिकता रखते थे। इसलिये जैसे ही गांधीजी के पास देश का नेतृत्व आया, जमनालालजी उनकी ओर आकर्षित हुए और उन्होंने गांधीजी से विनती की कि उन्हें उनका पाँचवा पुत्र माना जाय।

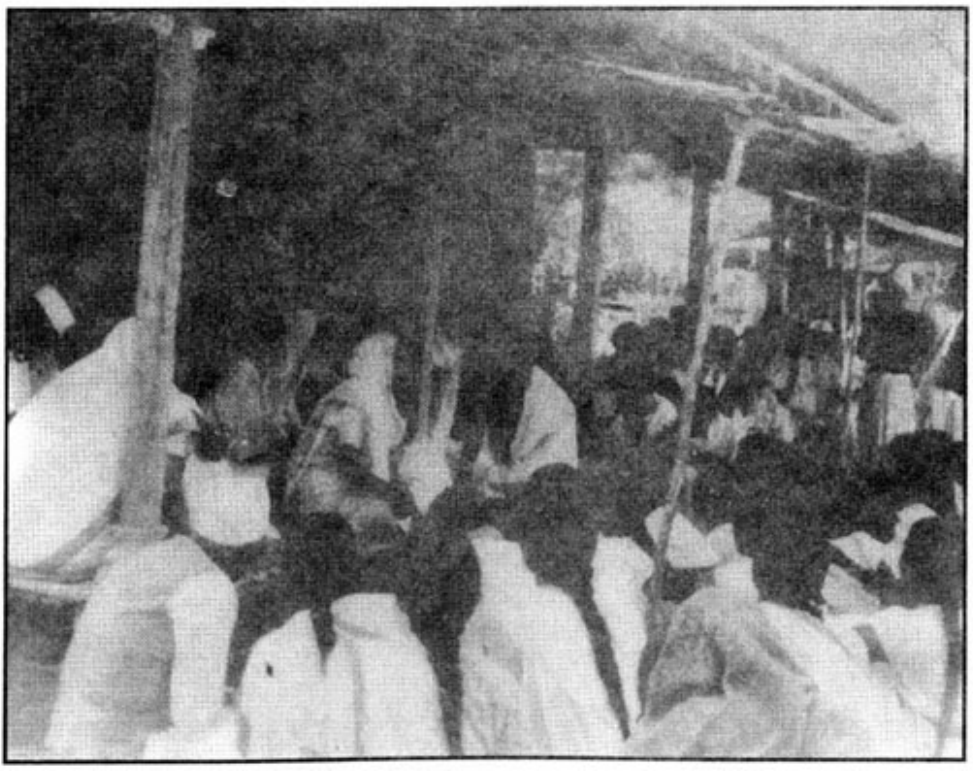

साबरमती में गांधीजी का आश्रम प्रारम्भ होते ही जमनालालजी ने वहाँ अपने लिये एक घर बनवा लिया। प्रतिमाह आश्रम को वे आर्थिक सहायता भी देने लगे। उनकी इच्छा थी कि वर्धा में भी एक आश्रम स्थापित किया जाय। इस दृष्टि से किसी सुयोग्य कार्यकर्ता की उन्होंने गांधीजी से मांग की। गांधीजी ने विनोबा को भेज दिया। विनोबाजी के लिये सेवाग्राम जाने के रास्ते पर एक मकान बना दिया गया। विनोबाजी अपने साथियों के साथ वहाँ रहने लगे। प्रारम्भ में सात लोग रहते थे। यह आश्रम १९२१ में प्रारम्भ हुआ। आगे जाकर इस आश्रम के सेवकों की संस्था व कीर्ति बढ़ती गयी।

१९३३ में साबरमती आश्रम बन्द होने पर श्री लक्ष्मीबाई खरे वहाँ की लड़कियों को लेकर वर्धा आईं। विनोबाजी के मार्गदर्शन में कन्या आश्रम प्रारम्भ हुआ। आगे जाकर यही महिला आश्रम बन गया। महिला आश्रम का खूब विकास हुआ। विनोबाजी के आश्रम के पास ही महिला आश्रम के मकानात बनते गये।

गांधीजी के सेवाग्राम चले जाने के बाद प्रतिवर्ष चरखा जयन्ति पर यानी २ अक्तूबर को महिला आश्रम की छात्रायें सेवाग्राम की सफाई के लिये आती थीं। पिछले पृष्ठ के दोनों फोटो ऐसे अवसर के हैं। शायद १९४० वर्ष था। पहले चित्र में छात्रायें दो पंक्ति में खड़ी हैं। उनके पाँवों के पास सफाई के साधन व्यवस्थित ढंग से रखे हुए हैं। दूसरे चित्र में सेवाग्राम गाँव की झोंपड़ियाँ दिख रही हैं। गांधीजी विद्यार्थियों का निरीक्षण कर रहे हैं।

दूसरा फोटो बा कुटी में हो रही बैठक का है। बरामदे में बैठकर गांधीजी सामने बैठे लोगों को उपदेश दे रहे हैं। गांधीजी के आसपास महिलाश्रम के संचालक व शिक्षक बैठे हैं। जवाहरमल गुलराजानी (आचार्य), बासंती बहन राय (गृह व्यवस्थापिका), कमलाताई लेले तथा मालतीताई थत्ते (शिक्षिका) तथा दामोदर दास मूँदड़ा संस्था के मंत्री। ये सभी गांधीजी के पास बैठे हैं। गांधीजी के पास शांताबहन रानीवाला बैठी हैं। उनके आर्थिक सहयोग से महिलाश्रम का प्रारम्भिक काम चला, यद्यपि प्रेरणा जमनालालजी की रही।

० ० ०

३३. कानून भंग

स्वातंत्र्याचा पाइक निधडा, गरिबांचा कैवारी उघडा ।
सत्याचा मूर्तिमंत पुतळा, घेउनि हातीं शिर ।।

– प्रभाकर दिवाण

(वह स्वतंत्रता का निर्भय सेनानी है। गरीबों का हिमायती है। खुले बदन है। सत्य का मूर्तिमंत पुतला है। वह हमेशा मृत्यु की तैयारी रखकर चलता है।)

विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने पर अँग्रेज सरकार की बेजवाबदार राजनीति के कारण कांग्रेस को सरकार से असहयोग करना पड़ा। आठों प्रान्तों के कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिये। वायसराय से अनेक बार वार्ता हुई, फिर भी सरकार देश की स्वतंत्रता के लिये कोई भी आश्वासन देने को तैयार नहीं हुई। इसके उलट कांग्रेस के अलावा अन्य राजनैतिक पक्षों की सम्मति का जोर-शोर से प्रचार करके सरकार यह सिद्ध करना चाहती थी कि भारत युद्ध के अनुकूल है। इस परिस्थिति में सांकेतिक विरोध प्रकट करने की दृष्टि से गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ किया। इसके लिये देशभर से प्रथम सत्याग्रही के तौर पर गांधीजी ने विनोबा भावे का चुनाव किया। उनसे चर्चा करने के लिये गांधीजी ने उन्हें अपने पास बुलाया।

उन दिनों विनोबा वर्धा से पाँच-छह मील दूर पवनार गाँव में रहते थे। गांधीजी की आज्ञा मानकर वे सेवाग्राम पहुँचे। अगले पृष्ठ के चित्र में दोनों की मुलाकात दिख रही है। गांधीजी ने जब उन्हें बुलाने का उद्देश्य बतलाया तो वे बोले, "आपकी आज्ञा मैं ईश्वरीय आज्ञा मानता हूँ।"

१७ अक्तूबर १९४० को सरकार को पूर्व सूचना देकर विनोबाजी ने कानून भंग सत्याग्रह प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा कि हम इस विश्वयुद्ध के विरोध में हैं तथा इस सरकार को युद्धकार्य में मदद नहीं करनी चाहिये। यही कानून भंग था। सर्वप्रथम पवनार गाँव में भाषण देकर

विनोबा ने सत्याग्रह किया। उसके बाद तीन दिन तक तीन गाँवों में भाषण दिये। २१ अक्तूबर को उन्हें पकड़ा गया तथा तीन महीने की सजा हुई।

बाद में तो देशभर में कानून भंग आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। प्रारम्भ में गांधीजी ने कुछ सत्याग्रही चुने, परंतु बाद में चुनाव जीतकर आये हुए जनता के प्रतिनिधियों को सत्याग्रह के लिये भेजा। युद्ध के विरोध में घोषणा देने मात्र से कानून-भंग हो जाता था। विनोबा के बाद ३१ अक्तूबर को जवाहरलालजी को सरकार ने पकड़ा। वे सेवाग्राम में गांधीजी से मिलकर वापस जा रहे थे। विनोबा के बाद सात नवम्बर को वे कानून भंग सत्याग्रह करें, ऐसी सलाह गांधीजी ने उनको दी थी। उनको पूर्व में कभी दिये भाषण के अपराध में चार वर्ष की कैद की सजा दी गई।

कानून भंग सत्याग्रह का मुख्य कार्यालय सेवाग्राम ही रहा। कांग्रेस ने गांधीजी को सेनापति बनाया था। हर प्रान्त के कार्यकर्ता अपना प्रार्थना

पत्र उनके प्रान्त की कांग्रेस समिति की सिफारिश के साथ गांधीजी के पास भेजते थे और गांधीजी की मंजूरी मिलने पर ही वे सत्याग्रह कर सकते थे। इस तरह एक वर्ष तक चलता रहा।

० ० ०

३४. ये यथा मां प्रपद्यन्ते

(जो मेरी जैसी भक्ति करता है।)

असोत तुज आमुचीं सकल भाविकायुर्बळें ।।

– मोरोपंत

(हम सब भक्तों की आयु तथा बल तुम्हें समर्पित हो।)

अगले पृष्ठ के फोटो की घटना फरवरी १९४० की है। व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ हुए तीन माह हो चुके थे। सेवाग्राम आश्रम के काम नियमित चालू थे। उत्साही सत्याग्रहियों के नामों की सूचियाँ गांधीजी के पास आती थीं और उनमें से वे सत्याग्रही चुनते थे। इन्हीं दिनों मुंबई से एक पारसी महिला आई। वह बहन थोड़ी ज्यादा उम्र की परंतु बहुत वाचाल थी और बच्चों के समान सरल भी। गांधीजी के प्रति उसके मन में खूब भक्तिभाव था। मुंबई में जब भी गांधीजी रहते, वह बहन रोज शाम की प्रार्थना में आती थी और गांधीजी से प्रेम से बोलती थी। गांधीजी भी उसकी प्रसंशा करते थे और प्रेमल व्यवहार करते थे। इस बार वह बहन सेवाग्राम आयी और शाम के समय पूजा सामग्री लेकर उसने बापूकुटी के पास से गांधीजी को आवाज दी। अपना लेखन बन्द करके गांधीजी बाहर आये, कस्तूरबा भी आईं। इन दोनों की पूजा करने का सामान पहले फोटो में दिख रहा है। थाली में धूपदानी में धूप जल रही है। नारियल आदि सामग्री भी है। दूसरे फोटो में यह बहन कस्तूरबा की पूजा कर रही है। पूजा करके बहन ने उनकी आरती उतारी। उसकी भेंट दी चीजों में एक चन्दन की जपमाला भी थी। पारसी लोग अपने धार्मिक कामों में चन्दन को अत्यावश्यक मानते हैं।

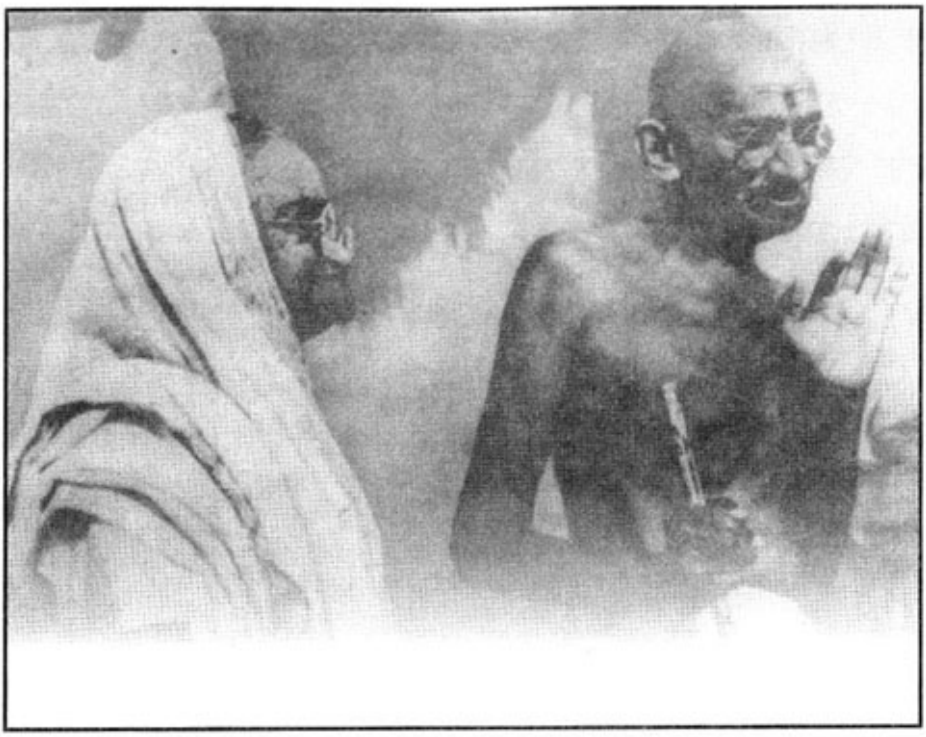

कांग्रेस मंत्रिमंडल के पदारूढ़ होते ही शराबबन्दी का कार्यक्रम अमल में आया। मुंबई में शराब बिक्री करने वालों में बहुत से पारसी लोग थे। शराबबन्दी के कारण उनका व्यापार कम हो गया, इससे उनमें असंतोष फैला था। समाज के प्रतिष्ठित लोगों का एक शिष्टमंडल गांधीजी से मिलने आया। इतना सब होने पर जो भी पारसी लोग गांधीजी के भक्त थे, वे विरोधी नहीं बने। गांधीजी के प्रति उनकी भक्ति व आदर अन्त तक बना रहा।

सत्याग्रह का स्वरूप आगे जाकर तीव्र होता गया। फिर भी, सेवाग्राम आश्रम के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को सत्याग्रह में भाग नहीं लेना है, ऐसा गांधीजी ने कह रखा था। बलवंत सिंह, पारनेरकर, चिमनलाल, सुकाभाऊ चौधरी आदि लोगों को बाहर ही रहना चाहिये ऐसा उनका आदेश था। इन्हीं दिनों में गांधीजी ने आश्रम में सेप्टिक टैंकवाला संडास बनाने की अनुमति दी थी। उसको बाँधने का काम चल रहा था। इसके अनेक प्रयोग चल रहे थे।

आश्रम की खेती व बगीचे से आश्रम के लिये आवश्यक फल-सब्जी पैदा होनी चाहिये। अन्न-वस्त्र व दूध में आश्रम स्वावलंबी होना चाहिये। इस दृष्टि से वे अनेक प्रयोग करते रहते थे। विभिन्न कामों में लगे कार्यकर्ताओं में आपस में मेलजोल रहना चाहिए। सब लोग सच्चे दिल से एक दूसरे के सहयोगी बनें, ऐसा उपदेश वे करते थे।

० ० ०

३५ कुटुम्बवत्सल गांधीजी

राया जो निर्मळु । निष्कलंक लोककृपाळु ।
शरणागतां स्नेहाळु । शरण्य जो ।।

– ज्ञानदेव

(वह (भगवान) निर्मल, निष्कलंक, लोगों पर कृपा करने वाला, शरणागतों को अभय देने वाला और शरण जाने योग्य है।)

व्यक्तिगत कानून-भंग सत्याग्रह प्रारम्भ होने पर कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य तथा कांग्रेस के कोषाध्यक्ष श्री जमनालालजी बजाज भी जेल भेज दिये गये। उनकी पत्नी जानकीदेवी को अपने स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से उपवास करना था। गांधीजी ने उनको सेवाग्राम आश्रम में बुला लिया। वहाँ रहकर जानकीदेवी ने पन्द्रह दिन के उपवास किये। गांधीजी प्रतिदिन उनकी कुशलक्षेम पूछने जाते थे। ऐसे ही अवसर का एक फोटो अगले पृष्ठ पर दिया गया है। प्रसन्न मुख से जानकीदेवी गांधीजी से कह रही हैं, "उपवास इतनी अच्छी तरह से हुआ कि मन में इसे और लम्बा करने की इच्छा होती है।"

यह जमनालालजी का सद्‌भाग्य ही कहा जायेगा कि उनके परिवार ने उनके जीतेजी उनके ध्येयनिष्ठ जीवन में पूरा साथ दिया।

जो तोषवी स्वजनकास सुपुत्र तोच।
जें दे पतीस सुख फार कलत्र तेंच।।

(जो स्वजनों को समाधान देता है, वही सुपुत्र है। जो पति को अपार सुख दे, वही पत्नी है।)

जमनालालजी के चारों बच्चों में से उनकी पुत्री मदालसा ने अपनी धर्म भावना से तथा प्रयोग वीरता से पिता का अनुसरण किया। जमनालालजी ने अपने बच्चों को सरकारी पाठशालाओं में नहीं भेजा। विनोबाजी के आश्रम से तथा बजाजवाड़ी में रहने वाले कार्यकर्ताओं से ही उन्हें संस्कार और शिक्षण – दोनों प्राप्त हुए। मदालसा ने तो विनोबाजी के

पास रहकर कुछ समय तक कठिन तपश्चर्या की। बाद में जवान होने पर शादी हुई फिर भी गांधीजी और विनोबाजी के बारे में उनके मन में आदर हमेशा कायम रहा। उनका पहला पुत्र भरत आठ महीने का था, तब वह अपने मायके की तरह सेवाग्राम आश्रम में आकर रहीं। भरत की इच्छा थी कि गांधीजी उसे गोद उठावें उस समय एक फोटो निकाला जाय। उसकी वह इच्छा पिछले पृष्ठ के दूसरे चित्र में पूरी हुई दिखती है। समय जुलाई १९४२ का होगा। जमनालालजी के स्वर्गवास के बाद की यह घटना है। अगले अध्याय में जमनालालजी के अंतिम समय का वर्णन दिया जा रहा है।

० ० ०

३६. पुत्र-वियोग

उत्पन्नेऽपि विरागे विना प्रबोधं सुखं न स्यात् ।
स भवेत् गुरूपदेशात् तस्माद् गुरुमाश्रयेत् प्रथमम् ।।

– श्री शंकराचार्य

(मन में वैराग्य आने पर भी ज्ञान मिले बिना सुख नहीं मिलता। ज्ञान गुरु के उपदेश से प्राप्त होता है, अत: सर्वप्रथम गुरु का आश्रय लें।)

व्यक्तिगत सत्याग्रह में जमनालालजी ने भाग लिया और जेल गये। इस बार की जेल यात्रा में उनकी तबियत बहुत बिगड़ गयी। इसलिये यद्यपि उनकी सजा २१-९-१९४१ को समाप्त होने वाली थी, फिर भी सरकार ने उन्हें ३०-६-१९४१ को ही छोड़ दिया। वे शरीर से थक गये थे। उनके मन में भी परिवर्तन होता जा रहा था। पहले से ही उनकी रुचि धर्म कार्य की ओर थी। उन्हें सत्संग बहुत प्रिय था। दक्षिण के प्रसिद्ध संत अरुणाचल के श्री रमण महर्षि तथा पांडिचेरी के श्री अरविंद घोष के दर्शन करके वे वापस आये थे। उनकी इच्छा थी कि उन्हें मानसिक शांति मिलनी चाहिये। गांधीजी ने उन्हें सुझाया कि वे स्व. कमला नेहरू की गुरु देहरादून की माता आनंदमयी के दर्शन कर आयें। वे वहाँ गये भी और उन्हें वहाँ शांति का अनुभव हुआ। इसका वर्णन

उनकी दैनंदिनी में मिलता है। उन्होंने गांधीजी को अपना पिता माना था, उसी तरह माता आनन्दमयी को माँ के समान मानते थे। धीरे-धीरे उनका मन राजनीति से निवृत्त होता जा रहा था। उनकी इच्छा तो थी कि किसी एक स्थान पर बैठकर रचनात्मक काम किया जाय।

१९४१ दिसम्बर के पहले पखवाड़े में सरकार ने व्यक्तिगत सत्याग्रह में जेल गये सभी सत्याग्रहियों को छोड़ दिया। पं. जवाहरलाल नेहरू और मौलाना आजाद की भी मुक्ति हुई। इसके पीछे सरकार की राजनीति छिपी हुई थी। हिटलर ने रूस पर आक्रमण कर दिया था। वहाँ से वह निश्चित ही पूरब की दिशा में बढ़ने वाला था। उधर इंडोचीन में जापान ने अपने पाँव मजबूती से जमा लिये थे। वह भी विश्वयुद्ध में शामिल होने की तैयारी कर रहा था। ऐसी परिस्थिति में हिन्दुस्तान की विशाल साधन-सामग्री एकत्रित कर लोगों को युद्ध में सहयोग देने के लिये राजी करना एक मजबूरी बन गई थी। इसलिये कांग्रेस को अपने पक्ष में करने के उद्देश्य से सरकार ने आम माफी जाहिर की थी।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद जमनालालजी गांधीजी के पास आये। सेवाग्राम आश्रम में बापू कुटी के आँगन में उनकी भेंट हुई। यह दृश्य नीचे के चित्र में दिखता है।

जमनालालजी बोले 'मुझे अब राजनीति में रुचि नहीं रही है। कहीं शांत वातावरण में बैठकर कोई रचनात्मक काम करने की इच्छा होती है। आप इस दृष्टि से मार्गदर्शन दीजिये।' वे गांधीजी से अपने जीवन की अगली राह पूछ रहे थे। गांधीजी बोले, "काम तो अनेक हैं। परंतु अधिकांश काम करने वाले लोग हैं। परन्तु गोसेवा संघ का एक काम ऐसा अभी भी बचा है, जिसकी ठीक ढंग से व्यवस्था नहीं हो पाई है। अगर तुम इस काम को खड़ा कर सको तो यह काम तुम्हारे योग्य है।'

जमनालालजी खुश हो गये। उन्होंने तुरंत अपनी सम्मति दी और काम में लग गये। गोपालकों की एक अखिल भारतीय सभा उन्होंने फरवरी १९४२ के पहले सप्ताह में वर्धा में आयोजित की। उसमें गांधीजी ने बहुत मूल्यवान भाषण देकर सबका मार्गदर्शन किया। जमनालालजी के हाथों से यह काम उत्तरोत्तर प्रगति करता जायेगा ऐसी गांधीजी व अन्य सभी साथियों की भावना थी। परन्तु 'मनसा चिन्तितं कार्य दैवमन्यत्र चिन्तयेत्।' (हम मन में एक कार्य करने का सोचते हैं, परंतु भगवान दूसरा ही सोचता है।) इस कहावत के अनुसार इस भावना पर अचानक कुठाराघात हुआ। ११ फरवरी १९४२ को दोपहर में जमनालालजी अपने वर्धा निवास में एकाएक बेहोश होकर गिर पड़े और मृत्यु को प्राप्त हुए। इस घटना से गांधीजी को सबसे अधिक आघात पहुँचा। उनका माना हुआ पाँचवा पुत्र उन्हें छोड़ गया। मगनलाल भाई की असामयिक मृत्यु से गांधीजी अपंग जैसे बन गये थे। जमनालालजी की मृत्यु से वही दु:खद अनुभव पुन: भोगना पड़ा। गांधीजी का स्वयँ का जीवन किनारे पर आने लगा था। इस अंतिम अवस्था में गांधीजी को अनेक दु:खद अनुभव हुए। जमनालालजी के कुछ दिनों बाद ही जेल में महादेव भाई गये और बाद में कस्तूरबा भी चली गयीं।

संत तुकाराम की भूमिका में गांधीजी आ गये –

बाप मेला न कळतां । नव्हती संसाराची चिंता ।।१।।
विठो तुझें माझें राज्य । नाहीं दुसऱ्याचें काज ।।२।।
बाइल मेली मुक्त झालो । देवें माया सोडविली ।।३।।
पोर मेलें बरें झालें । देवें माये विरहित केलें ।।४।।
माता मेली मज देखतां । तुका म्हणे हरली चिंता ।।५।।

(जब कुछ समझ नहीं थी और घर की चिन्ता नहीं थी ऐसी उमर में बाप मर गया। अब भगवान् का और मेरा ही राज्य है। इसमें दूसरे का काम नहीं। पत्नी मरी तो मुक्त हो गया। ईश्वर ने मुझे माया से मुक्त कर दिया। बच्चे मर गये, यह भी अच्छा हुआ, भगवान् ने मोहरहित कर दिया। मेरे देखते माता मर गई। तुकाराम कहते हैं ऐसे सगे-सम्बन्धियों की मृत्यु से मेरी सब चिन्ता दूर हो गई।)

गांधीजी के जीवन में जमनालालजी का अनन्य स्थान था। उनके सभी कामों में जमनालालजी का सहयोग रहता था। सेवाग्राम का आश्रम तो उनकी जमीन पर ही बसा था। अपनी मालिकी की करीब ७५ एकड़ जमीन उन्होंने आश्रम तथा हिन्दुस्तानी तालीमी संघ को दान दे दी तथा उनकी मालगुजारी की जमीन जब आश्रम की ओर से खरीदी गई तो उस जमीन की वही कीमत उन्होंने ली जो आश्रम ने तय कर दी। उनकी दानशीलता देशभर में प्रसिद्ध थी। उन सब कामों का वर्णन करना इस पुस्तक की मर्यादा के बाहर होगा। फिर भी एक बात ध्यान देने योग्य है। जमनालालजी ने गांधीजी के दोनों आश्रमों (सत्याग्रह आश्रम तथा सेवाग्राम आश्रम) को भरपूर मदद की। इसके सिवाय दोनों आश्रमों के कार्यकर्ताओं से उनके स्वतंत्र सम्बन्ध थे। उनको भी वे आवश्यकतानुसार मदद करते रहते थे। उनको मार्गदर्शन देते रहते थे। उनके सुख-दुःख को समझते थे। गांधीजी ने उनको अपनी 'कामधेनु' कहा था। यह सब दृष्टि से सत्य ही था।

जमनालालजी के स्वर्गवास के कुछ दिनों बाद ही माता आनन्दमयी वर्धा आयीं। जमनालालजी के परिवारवालों ने उन्हें आदरपूर्वक रखा। एक बार वे पूरे परिवार वालों के साथ सेवाग्राम आकर गांधीजी से मिलीं। ऊपर दिया चित्र उसी प्रसंग का है। गांधीजी माता आनन्दमयी से बात कर रहे हैं। माताजी की पीठ कैमरे की ओर है, फिर भी उनके चेहरे की झलक दिखाई दे रही है।

० ० ०

३७. लूई फिशर की भेंट

राखों जाणे नीतिन्याय । न करी न करवी अन्याय।
कठिण प्रसंगीं उपाय । करूं जाणे ।।

– दासबोध

(जो सदा नीति और न्याय का पालन करना जानता है; जो न तो अन्याय करता है और न कराता है, वही कठिन प्रसंगों में उचित उपाय सुझा सकता है।)

अमेरिका के पत्रकार लुई फिशर का नाम संसार में प्रसिद्ध है। १९२१ से प्रारम्भ करके अगले पचीस वर्ष वे 'न्यूयार्क पोस्ट' नामक अमरीकी पत्रिका के यूरोप व एशिया के संवाददाता रहे। रूस, भारत तथा मध्य पूर्व के देशों के बारे में वे अधिकारपूर्वक लिखने वाले व्यक्ति थे। दूसरा विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ तब में वे फ्रान्स में थे। कुछ महीने वे पेरिस व लंदन में आवाजाही करते रहे। बाद वे अन्य देशों में भी गये। सन् १९४२ के मई माह में वे भारत आये। वे यहाँ दो माह रहे। उन दिनों युद्ध का स्वरूप बहुत विकराल हो गया था। जापान ने ब्रह्मदेश जीत लिया था। सारा भारत चिंतित था। अँग्रेज सरकार व जनता भी चिंता में पड़ गयी थी।

जून के पहले सप्ताह में लूई फिशर सेवाग्राम आये। वे यहाँ आठ दिन रहे। वे रोज एक घंटा गांधीजी से मुलाकात लेते थे। इसके सिवाय भोजन के समय अथवा घूमते समय भी बातें होती थीं। इस सप्ताह का अनुभव बाद में उन्होंने लिखकर प्रकाशित किया।

आग के चित्र में गांधीजी और लुई फिशर दिख रहे हैं। उन दिनों गर्मी बहुत थी। शरीर जलता था। ठंडे देश के रहने वाले उस यात्री को सेवाग्राम की गर्मी असह्य हो गयी। फिर भी सारी मुसीबतों को सहकर वे यहाँ रहे, क्योंकि वे मन से गांधीजी को चाहते थे। एक सप्ताह यहाँ रहने से वे गांधीजी को अधिक समझने लगे। उनकी नजदीकी बढ़ गयी। दोनों

खुलकर एक दूसरे से बात करने लगे। गाँव के जीवन से समरस होने का गांधीजी का आग्रह उन्होंने प्रत्यक्ष देखा। गांधीजी के उठने, बैठने, पोशाक, पसंद-नापसंद इन सबका उन्होंने बहुत मार्मिक वर्णन दिया है। इस देश की गरीबी अपनी आँखों से देखने पर उन्होंने लिखा, 'गाँव के किसानों के कपड़ों की दैन्यावस्था देखकर यह कहा जा सकता है कि गांधीजी के पास पर्याप्त कपड़े थे। भारत के अधिकतर लोग – अक्षरश: अधिकतर लोग प्रतिदिन भूखे सोते हैं।'

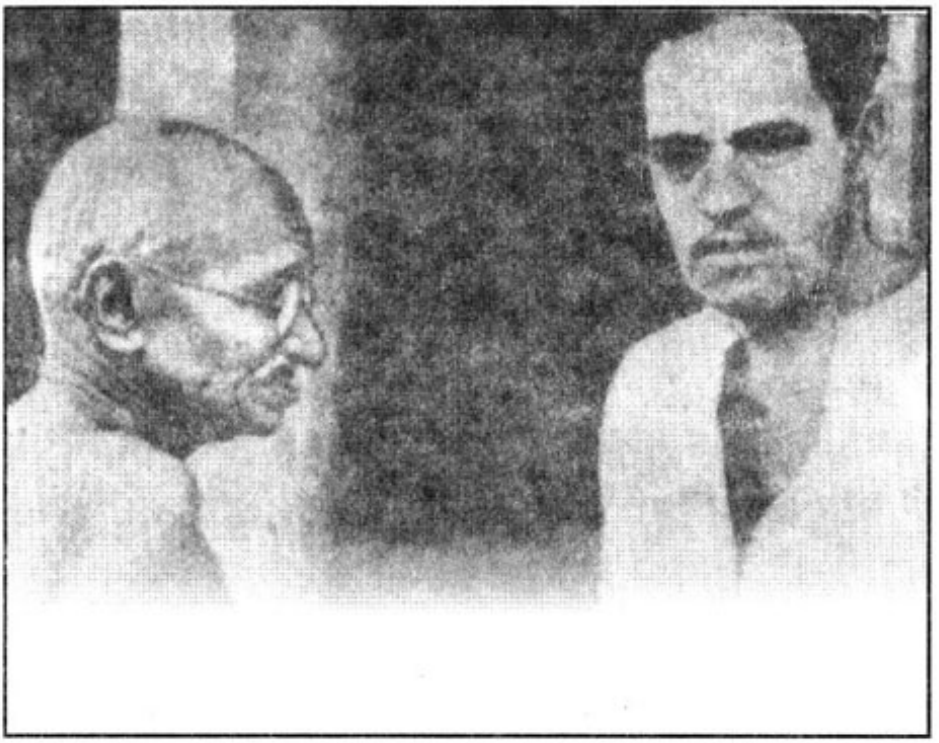

लूई फिशर के पूछने पर गांधीजी ने स्वीकार किया कि कांग्रेस का खर्च धनवान पूँजीपतियों से मिलता है। उनका स्वयँ का खर्च भी मुंबई के सूती मिल मालिकों के दान से चलता है। आगे उन्होंने कहा 'उदाहरण के लिये इस आश्रम को ही लीजिये। आज हम जिस तरह का जीवन जी रहे हैं, उससे ज्यादा गरीबों में भी हम रह सकते थे, परंतु वैसा हम आज नहीं कर रहे हैं इसका कारण इन मित्रों से सहजता से मिलने वाला दान ही है।' इतना जरूर है कि इस आर्थिक सहायता का परिणाम कांग्रेस के राजनैतिक अथवा आर्थिक विचारों पर बिलकुल नहीं होता है।

गांधीजी के बारे में लुई फिशर लिखते हैं, ''गांधीजी के साथ रहने में मुझे कोई भय नहीं महसूस हुआ। मुझे लगा कि मैं एक प्रेमी, सौम्य, खुले दिल वाला, स्वस्थ, आनंदी, सुसभ्य एवं अत्यंत सुसंस्कृत व्यक्ति के संग में रह रहा हूँ। उनके व्यक्तित्व का चमत्कार भी मुझे समझ में आया। अपने पास किसी तरह की सत्ता या संगठन कुशलता न होने पर भी उन्होंने अपने बिखरे हुए देश के कोने-कोने तक अपने प्रभाव का प्रकाश फैला दिया था। इतना ही नहीं, उनका प्रभाव टुकड़ों में बँटी हुई दुनिया के कोने-कोने में पहुँच गया था।... लोगों तक पहुँचने के उनके साधन थे – प्रत्यक्ष सम्पर्क, क्रियात्मक प्रत्यक्ष उदाहरण (अपने जीवन से) और सत्य, अहिंसा, साधनशुद्धि आदि शाश्वत सिद्धान्तों के प्रति उनकी निष्ठा।''

लूई फिशर जब सेवाग्राम में थे, उन्हीं दिनों समाजवादी नेता आचार्य नरेन्द्र देव भी यहीं थे। उनको दमा था, अत: गांधीजी ने उन्हें उपचार के लिये आश्रम में बुला लिया था। गांधीजी को बीमारों की सेवा करने में अपार आनन्द मिलता था। श्री बालजीभाई देसाई को भी उन्होंने इलाज के लिये आश्रम में बुला लिया था। आरोग्य की कुँजी हाथ में लगे, इस दृष्टि से वे विभिन्न विशेषज्ञों को आश्रम में बुलाकर सलाह लेते रहते थे। डा. बायके (अमेरिका के हड्डी तज्ञ), डा. लक्ष्मीपति (आयुर्वेद विशारद), डा. केलकर जिनका उल्लेख गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में 'आइस डाक्टर' (बर्फ चिकित्सक) के नाम से किया है, डाक्टर सतीशचन्द्र दास (बायोकेमिस्ट्री के विशेषज्ञ, पहले वे सर्जन थे), डा. कृष्ण वर्मा (प्राकृतिक चिकित्सक), श्री सरस्वती बहन गाड़ोदिया (दिल्ली की एक प्राकृतिक चिकित्सा की उपासक – उन्होंने अपने साथ एक हकीम को भी लाया था), डा. मूर्ति (होमियोपैथी डाक्टर), राजवैद्य शिवशंकर शर्मा, डा. हीरालाल शर्मा, डा. बट्रा, श्री कृष्णराज, डा. दिनशा मेहता आदि अनेक विशेषज्ञ समय-समय पर आश्रम में रहे और अपनी कला यहाँ सिखाकर गये।

० ० ०

३८. दिव्य आहुति

देवाच्या सख्यत्वासाठीं । पडाव्या जिवलगांशीं तुटी ।
सर्व अर्पावें शेवटीं । प्राण तोही वेंचावा ।।

– दासबोध

(ईश्वर का साथ पाने के लिये नाते-रिश्तेदारों से दूर रहना पड़ा तो चलेगा। अपना सर्वस्व भी अंत में भगवान् को अर्पण करें, लेकिन भगवान का साथ कभी न छोड़ें।)

जुलाई १९४२ में गांधीजी के मन में तीव्र हृदय-मंथन चल रहा था। उनका पूरा जीवन सत्य आराधना को समर्पित रहा था। सत्य का साक्षात्कार करने की उनमें तीव्र आकांक्षा थी। और इसके लिये उन्होंने अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ साधन माना था। अर्थात् जीवन में सर्वत्र सभी क्षेत्रों में साधनशुद्धि का आग्रह रखना अपरिहार्य था। वे राजनीति में गये क्योंकि वे मानते थे कि देश को विदेशी गुलामी से मुक्त कराना उनका धर्म है। १९३० के दांडी कूच के समय उन्होंने कहा था, 'इस शैतानी अँग्रेजी राज्य में मेरा ईश्वर गुम गया है। मैं उसकी खोज कर रहा हूँ। मेरी हर श्वास से मैं इस अँग्रेजी शासन का नाश चाहता हूँ।' मनुष्य जाति में बीच-बीच में जो दैवी अवतार प्रकट होते हैं, उनका मुख्य कार्य धर्म स्थापना होता है। उसका स्थूल परिणाम देश को भौतिक दृष्टि से स्वतंत्रता मिलने में होता है। गांधीजी भारत की स्वतंत्रता के लिये उतावले हो गये थे। दूसरा विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुए तीन साल बीत गये थे। सभी मोर्चों पर अँग्रेजों की हार हो रही थी। फिर भी उनकी बेशर्म निष्ठुरता में कुछ भी कमी नहीं आयी थी। गांधीजी को इसी का आश्चर्य लगता था। अँग्रेज चाहते थे कि भारत उनके साथ मिलकर युद्ध में कूद पड़े। परन्तु भारत को स्वतंत्रता देने के लिये वे कतई तैयार नहीं थे। क्रिप्स साहब आये और गये। परंतु परिस्थिति जैसी की तैसी बनी रही। विश्वयुद्ध के बाद कांग्रेस की नीति क्या होगी, इस बारे में गांधीजी और कांग्रेस के नेताओं मौलाना

आजाद, सरदार वल्लभभाई व श्री राजगोपालाचारी के बीच मतभेद हो गये थे। कुछ नेता सरकार से सशर्त सहयोग के पक्षधर थे। परंतु अँग्रेज सरकार ने किसी की नहीं सुनी, अत: वे सब पुन: गांधीजी के पास एकत्र हुए। प्राप्त परिस्थिति में से कोई रास्ता सुझाने के सारे अधिकार उन्होंने गांधीजी को दे दिये।

इस बड़ी और उलझनभरी जिम्मेवारी के कारण गांधीजी बहुत चिंतित थे। सेवाग्राम आश्रम में रहकर वे सतत सोचने लगे। उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था। फिर भी उसकी तरफ ध्यान देना उनके लिये संभव नहीं था क्योंकि आत्मबलिदान का विचार उनके मन में उठ रहा था। २६ जुलाई को उन्होंने विनोबाजी, किशोरलाल भाई व अन्य कुछ कार्यकर्ताओं को बुलाया और अपना मन उनके सामने खोलकर रखा। अपने पिछले सारे उपवासों का विवेचन करके उन्होंने कहा, 'पहले एक बार आन्दोलन में कुछ अशुद्धि आयी थी, अत: मेरे मन में उपवास श्रृंखला प्रारम्भ करने का विचार आया था। परन्तु साथियों को मेरी बात जँची नहीं। अत: मुझे उसे स्थगित रखना पड़ा। परन्तु अब मुझे दिख रहा है कि वह टालना सम्भव नहीं। इस समय हिंसा अपने पूरे तेज से चल रही है। सारे संसार में एक तरह का अंधकार फैला हुआ है। इस देश में भी असत्य विष का प्रचार किया जा रहा है। सरकार हमारे ही लोगों को हमारे विरुद्ध खड़ा करके खुद तमाशा देखना चाहती है। मुझे यह कैसे सहन होगा? मुझे ऐसा लग रहा है कि अब बलिदान दिये बिना यह ज्वाला शांत होने वाली नहीं है।''

इस विषय पर वे और भी बोलते रहे। बाद में चर्चा हुई। अंत में गांधीजी ने निर्णय दिया कि 'पहला बलिदान मेरा ही होना चाहिए।' किशोरलाल भाई चुप रहे। पर विनोबाजी ने अपनी सम्मति दी। बैठक समाप्त हुई, परन्तु महादेव भाई विचलित हो गये। उन्हें गांधीजी की योजना और उसे मिली विनोबाजी की सम्मति – दोनों बातें रुचिकर नहीं लगीं। उन्होंने एक लम्बा पत्र लिखकर अपना विरोध गांधीजी को बतलाया। गांधीजी ने उनका पत्र विनोबा के पास विचारार्थ भेज दिया। पत्र पढ़कर

विनोबा ने उस पर मनन करके महादेव भाई के युक्तिवाद का भी समर्थन कर दिया। इससे सारा वातावरण तात्कालिक रूप से शांत हो गया।

अगस्त ७ व ८ को मुंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक थी। बैठक समाप्ति पर सवेरा होने से पूर्व ही सरकार ने सभी नेताओं को, गांधीजी के साथ ही, गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया। आगाखाँ महल में गांधीजी थे तभी प्रथम महादेव देसाई का और बाद में कस्तूरबा का निधन हुआ। यह सब कथा इतिहास बन चुकी है। ५ अगस्त १९४२ को महादेव भाई और कस्तूरबा ने जो सेवाग्राम छोड़ा वह उनकी आखिरी विदाई साबित हुई। दोनों वापस यहाँ आये नहीं। इसी बीच गांधीजी ने अपना २१ दिन का उपवास किया था। उसमें वे भी मृत्यु के द्वार तक जाकर वापस आये थे। उनके सत्य के प्रयोग प्रतिदिन तीव्र होते जा रहे थे। गांधीजी उसमें अपनी आहुति देते जाते थे। फिर भी सत्य का 'भयानां भयं भीषणं भीषणानाम्' रूप सिमट नहीं रहा था। गांधीजी के बलिदान से ही वह सारा शांत हुआ।

१९४४ मई में गांधीजी जेल से रिहा हुए। उसके बाद स्वास्थ्य

सुधार की दृष्टि से वे पुणे, जुहू, पँचगनी आदि स्थानों पर समय-समय पर रहे। अगस्त दूसरे सप्ताह में वे सेवाग्राम वापस आये। उनके साथ बहुत से लोग थे। परन्तु वर्षों के साथी दोनों आत्मीय उनमें नहीं थे। आगाखाँ महल में कस्तूरबा ने एक तुलसी का पौधा पनपाया था। उसे सुरक्षित रूप से गांधीजी अपने साथ लाये थे। एक पवित्र दिन देखकर कस्तूरबा के उस पवित्र स्मारक को गांधीजी ने अपने हाथ से आश्रम के वृंदावन में लगाया। पिछले के चित्र में यही दृश्य दिखता है।

० ० ०

३९. अगस्त आन्दोलन व उसके बाद

विपत बराबर सुख नहीं, जो थोड़े दिन होय ।
इष्ट मित्र और बन्धु सब, जान पड़े सब कोय ।।

१९४२ अगस्त में गांधीजी और उनके सहयोगी नेताओं के जेल चले जाने पर इतिहास प्रसिद्ध 'अगस्त आन्दोलन' प्रारम्भ हुआ। इसमें देश के साथ सेवाग्राम आश्रम तथा गाँवों की भी परीक्षा हुई। गांधीजी गाँव वालों की सेवा करने के उद्देश्य से सेवाग्राम में आकर बैठे थे। वे गाँव के लोगों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति चाहते थे। सेवाग्राम गाँव के लोगों को उन्होंने कभी राजनीति नहीं सिखायी। आश्रम के कारण सेगाँव के कुछ बेकार लोगों को काम मिलने लगा, गाँव में शिक्षा में वृद्धि हुई, कुछ ग्रामोद्योग भी प्रारम्भ हुए, आरोग्य और स्वच्छता का शिक्षण भी लोगों को मिलने लगा। इस तरह गाँव की परिस्थिति में सुधार होने लगा। काम करने के लिए नौकरानियाँ व खेती सहायक रखना गांधीजी को पसन्द नहीं था। फिर भी हरिजन उद्धार की दृष्टि से उन्होंने रसोईघर में उनसे काम लेने की छूट दी हुई थी। कृष्णचन्द्रजी के हाथ के नीचे पाण्डुरंग कापसे तथा वरुड के विश्वनाथ ने खूब काम सीखा। तुलसीदास अम्बुलकर तथा दौलतराव ने आश्रम के हिसाब विभाग में काम करके प्रगति की। इसी तरह गोपालराव तथा प्रह्लाद भी यहाँ शिक्षण लेकर तैयार

हुए। दशरथ गवई सामान्य कार्यकर्ता था। बाद में वह चरखा संघ का कुशल शिक्षक बन गया। उसने अपनी पत्नी को भी बुनाई का शिक्षण दिलाया। तुकाराम जामलेकर पहले नागपुर की ईसाई धर्म प्रचार संस्था की ओर से सेवाग्राम में स्कूल चलाता था। पाठशाला में यह प्रयत्न रहता था कि विद्यार्थी ईसाई धर्म की ओर मुड़ें। गांधीजी ने उसे खूब समझाया। नागपुर के पादरी से भी पत्र-व्यवहार किया। प्रारम्भ में उनके प्रयत्न सफल नहीं हुए। प्रयास चालू रखने पर अंत में सफलता मिली और ईसाई धर्म प्रचार का काम बंद हुआ। गाँव के लोगों द्वारा समझाने पर जामलेकर ने बाद में ईसाई मिशन की नौकरी छोड़ दी। वह आश्रम में काम करने लगा। गाँव की मिशन की पाठशाला बंद हो गयी। भारतानन्दजी ने शिवराम को सुतार काम सिखाया। इसी प्रकार हरि भाऊ, गणपत भाऊ आवारी आदि कार्यकर्ता भी यहाँ तैयार हुए।

गांधीजी के जेल जाने पर किशोरलाल भाई आश्रम के मार्गदर्शक बने। सेवाग्राम आश्रम सत्याग्रह का मुख्य केन्द्र बना था। सेवाग्राम तथा आसपास के गाँवों से भी अनेक लोग सत्याग्रह के लिये तैयार हो गये। वे सब आकर आश्रम में रहे। रामपत ओझा नामक सिपाही ने अपनी नौकरी छोड़ दी तथा वह आन्दोलन में शामिल हो गया। वर्धा के तांगे वालों ने भी सरकारी अधिकारियों का बहिष्कार कर दिया।

२३ अगस्त को किशोरलाल भाई को गिरफ्तार कर लिया गया, उनके बाद आश्रम से बहनों की एक टोली सत्याग्रह करके जेल गई। सेवाग्राम गाँव के कुछ युवक भी इन्हीं दिनों कानून-भंग सत्याग्रह करके जेल गये। सेवाग्राम से पाँच-छह मील दूर के गाँव सेलू काटे से बहुत योग्य सत्याग्रही मिले। आश्रम की करीब-करीब सभी बहनें जेल चली गयीं। किशोरलाल भाई के जेल जाने के बाद उनके स्थान पर बलवंत सिंह आश्रम से सत्याग्रह का संचालन करने लगे। चरखा संघ की तरफ से सूका भाऊ चौधरी उनकी मदद में थे। चिमनलाल भाई को सात दिन जेल में रखकर छोड़ दिया गया क्योंकि उन्होंने कानून-भंग नहीं किया था। बलवंत सिंह भी जेल जाकर आये। कैदियों पर पुलिस के अत्याचार बहुत

हुए। फिर भी सत्याग्रही झुके नहीं। उन दिनों की एक बड़ी घटना भणसाली भाई का उपवास थी। पिछले अध्याय में इसका उल्लेख आया है। देश में सत्याग्रह की हलचल तेज हो रही थी, फिर भी भणसाली भाई अपने चरखे में ही मस्त थे। बाद में बलवंत सिंह के सुझाने पर वे अपना चरखा लेकर वर्धा गये। वहाँ उन्हें अनेक बार जेल जाना पड़ा। पुलिस उन्हें पकड़कर जेल ले जाती और वे जेल पहुँचते ही उपवास प्रारम्भ कर देते, इससे पुलिस उन्हें छोड़ देती थी। अंत में चिमूर गाँव में स्त्रियों पर जो अत्याचार हुए उसके विरोध में वे दिल्ली गये। वहाँ के कौंसिल के सभासद श्री अणे के उत्तर से वे संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने उपवास शुरू कर दिया। वह उपवास ६३ दिन चला। इस बीच उन्हें अनेक कष्ट सहन करने पड़े। परन्तु अंत में सत्य की जय हुई।

मुन्नालाल भाई, रमणलाल भाई व मोहन सिंह ने भी जेल यात्रा की। अपनी शक्तिभर आश्रम ने सत्याग्रह में अपना बलिदान दिया। स्त्री-पुरुष कोई भी पीछे नहीं रहा।

१९४४ मई माह में गांधीजी जेल से छूटे। स्वास्थ्य सुधरने पर वे अगस्त में सेवाग्राम आये। उन दिनों उनके मन में विचार चल रहा था कि आश्रम के कार्यकर्ता यदि बाहर जायेंगे तो अधिक अच्छा काम कर दिखायेंगे। इसलिए उन्हें बाहर भेज देना चाहिये। इस विषय पर उन्होंने कई दिनों तक आश्रमवासियों से चर्चा चलाई। परन्तु इन चर्चाओं से कुछ खास निकला नहीं। आगाखाँ महल से वापस आने पर आश्रम में सूत यज्ञ का वातावरण बढ़ता गया। एक निश्चित समय पर सभी आश्रमवासी एकत्र होकर सूत कातते थे। उस समय बहुत गंभीर वातावरण बन जाता था। प्रारम्भ में यह सूत्रयज्ञ महादेव भाई जिस कमरे में बैठकर काम करते थे, उस कमरे में होता था। गांधीजी अपने दीर्घकालीन वफादार साथी को कभी भूले नहीं। उनकी मृत्यु के बाद वे उनके खुले पुजारी बन गये। कस्तूरबा के बारे में भी ऐसा ही हुआ। वे २२ फरवरी को गुजरी थीं। इसलिये हर माह की २२ तारीख को आश्रम में प्रात: गीता पारायण होता था। सूत्रयज्ञ भी होता था। बा को तुलसी रामायण प्रिय थी अत: उसका

भी पाठ होता था। यह सारा कार्यक्रम बा कुटी में ही गांधीजी करवाते थे। प्रवास में भी २२ तारीख वे कभी भूलते नहीं थे।

ऊपर के चित्र में गांधीजी सूत्रयज्ञ के लिये महादेवकुटी की ओर जाते हुए दिखते हैं। उनके दायीं ओर आश्रम व्यवस्थापक चिमनलाल भाई तथा बाईं और सुशीला नैयर हैं।

० ० ०

४०. विरोध

उदंड धिक्कारूनि बोलती । तरी चळो नेदीच शांति ।
दुर्जनासी मिळोनि जाती । धन्य ते साधु ।।

– दासबोध

(लोग काफी धिक्कारते हैं, फिर भी जिनकी अन्तर की शान्ति भंग नहीं होती। जो दुर्जन को भी अपना लेता है, वह साधु धन्य है।)

गांधीजी सेवाग्राम आये तो, परन्तु उन्हें शांति से रहने के लिये अधिक समय नहीं मिला। कांग्रेस कार्यकारिणी के लोग अहमद नगर के किले में बंद थे, परन्तु अन्य बहुत से कैदी छूट गये थे। तीन प्रान्तों में मुस्लिम लीग के मंत्रिमंडल कार्यरत् थे। अन्य प्रान्तों में अँग्रेज सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी कार्य देख रहे थे। राजनीति सर्वत्र छाई हुई थी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच पटरी नहीं बैठ रही थी, इससे अँग्रेज सरकार जीतती जा रही थी। देश के विचारशील लोगों को यह परिस्थिति असह्य लगती थी। मुस्लिम लीग की ओर से तथा बाहर से भी जिन्ना पर दबाव बनाया जा रहा था कि 'स्वतंत्रता का मार्ग खुला करने के लिये वे कांग्रेस से समझौता कर रास्ता निकालें।' जिन्ना ने ५ अगस्त १९४४ के दिन सार्वजनिक बयान देकर गांधीजी से निवेदन किया कि 'अपन दोनों मिलें ऐसी सबकी इच्छा दिखती है। अब हम मिलने ही वाले हैं, अत: एक दूसरे का सहयोग करने की भावना रखें। पिछली सब बातें भूल जावें।' जिन्ना गांधीजी को कभी भी 'महात्मा' कहकर नहीं संबोधित करते थे। परन्तु इस निमंत्रण में उन्होंने इस पद का उपयोग किया।

इस निवेदन से जनता में उच्च स्तर तक आशा का संचार हुआ। गांधीजी जिन्ना से मिलने के लिए ८ सितम्बर को सेवाग्राम से रवाना होने वाले थे। परन्तु यह समाचार प्रकाशित होते ही हिन्दू महासभा और उसके जैसे अन्य लोगों के मन में विरोध उत्पन्न हुआ। मुस्लिम लीग ने लाहौर अधिवेशन में मुसलमानों के लिये पाकिस्तान की मांग रखी थी। हिन्दू

महासभा वालों को लगा कि गांधीजी स्वतंत्रता के लिये मुस्लिम लीग को यह कीमत देकर देश के टुकड़े करने को तैयार हो जायेंगे। इसलिये उनमें से कुछ कट्टर विरोधी लोगों की एक टोली गांधीजी को रोकने के लिये सेवाग्राम आयी। उसके मुखिया थत्ते नामक सज्जन थे। उन्होंने सेवाग्राम आश्रम में धरना दिया। पहले दिन थत्ते ने चेतावनी दी कि 'धरना यह पहला कदम है। अगर आवश्यक हुआ तो जिन्ना को मिलने जाने से रोकने के लिए गांधीजी के साथ जबरदस्ती भी की जायेगी।' अपनी धमकी को अमल में लाने की दृष्टि से उन्होंने बापू कुटी के तीनों दरवाजों पर रोक लगा दी। गांधीजी शांत थे। उन्होंने विरोधियों को समझाने का प्रयास किया, परन्तु वे सुनने को तैयार नहीं थे। तब गांधीजी ने तय किया कि वे उन लोगों के बीच से रास्ता बनाते हुए पैदल ही वर्धा स्टेशन की ओर जायेंगे। अगर विरोधी लोगों का हृदय-परिवर्तन हुआ और उन्होंने उन्हें जाने दिया तो ही वे जायेंगे, अन्यथा नहीं।

इसी बीच वर्धा जिले के पुलिस अधीक्षक सिपाही लेकर आये। उन्होंने भी विरोधी लोगों को समझाने का प्रयास किया, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। इस पर पूर्व सूचना देकर उन्होंने विरोध करने वालों को गिरफ्तार कर लिया। गांधीजी का रास्ता खुला हो गया।

पुलिस ने थत्ते की तलाशी ली तो उसके पास एक छुरा मिला। पुलिस ने इस बारे में उससे पूछा तो बोला, 'हम विरोध करनेवाले हैं, यह सुनकर खाकसार लोगों ने भी प्रतिरोध करने की घोषणा की है। ऐसा हुआ तो स्वयँ का बचाव करने के लिये यह खंजर मैंने अपने पास रखा है।' थत्ते को गिरफ्तार करनेवाला पुलिस अधिकारी बोला, 'तुम्हें शहीद होने का संतोष जरूर मिल जाता।' थत्ते बोला, 'छि: ! गांधीजी की हत्या हुए बिना मुझे समाधान नहीं मिलने वाला।' पुलिस अधिकारी मजाक में बोला, 'इस तरह के झगड़ों का निपटारा अपने नेताओं को क्यों नहीं सौंप देते? सावरकर को लगेगा तो वे स्वयँ आकर यह काम कर देंगे।' इस पर थत्ते बोला, 'इतना बड़ा आदर गांधीजी को नहीं मिलेगा। कोई जमादार ही यह काम पूरा कर देगा।'

थत्ते के साथ में नाथूराम विनायक गोडसे भी था। उसकी ओर देखकर उसने 'जमादार' शब्द संबोधित किया था। आगे जाकर साढ़े तीन वर्ष बाद थत्ते की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई।

ऊपर के चित्र में गांधीजी विरोधी लोगों से बात कर रहे हैं। उनके पास में प्यारेलाल खड़े हैं। पास ही उनका छोटा पौत्र अपने साथी के साथ खड़ा है। गांधीजी निर्भयता की मूर्ति थे। उनके मन में किसी के भी प्रति द्वेष नहीं था। गीता का आदर्श –

शत्रु मित्र उदासीन मध्यस्थ परका सखा ।
असो साधु असो पापी सम पाहे विशेष तो ।।

(जो शत्रु, मित्र, मध्यस्थ, पराया, अपना, सदाचारी, दुराचारी – सभी के लिये समान भाव रखता है, वह विशेष है, वह सर्वोत्तम (योगी) है।)

गांधीजी ने इसे हृदयंगम किया हुआ था। इसलिए किसी भी परीक्षा के अवसर पर वे कभी कमजोर नहीं साबित होते थे। कार्य जितना महान् उसमें बाधाएँ भी उतनी महान् होगी ही। गांधीजी का कार्यक्षेत्र व

उद्देश्य इतने ऊँचे थे कि उनका विरोध तथा उनपर आयी विपत्तियाँ भी उतनी प्रखर होनी ही थी। इस बारे में दु:ख या आश्चर्य नहीं होना चाहिए। विरोध व संकटों ने उनका गौरव बढ़ाया ही।

सेवाग्राम आश्रम के इतिहास में यह एक अपूर्व घटना घटी।

० ० ०

४१. स्मारक

देह त्यागितां कीर्ति मागें उरावी ।
मना, सज्जना, हेचि क्रिया धरावी ।
मना, चन्दनाचे परी त्वां झिजावें ।
परी अन्तरीं सज्जनां नीववावें ।।

– समर्थ रामदास (मनोबोध)

(हे मेरे मन, यह देह छूटने पर कीर्ति शेष रहे ऐसे ही काम कर। हे मन, तू चन्दन जैसा घिसता जा और सज्जन लोगों को समाधान-शीतलता देता जा।)

२२ फरवरी, १९४४ महाशिवरात्रि के पवित्र दिन राष्ट्रमाता कस्तूरबा ने आगाखाँ महल में अपनी देह छोड़ी। यह समाचार बाहर आते ही देश में दु:ख की लहर फैल गयी। सारे देश में हड़ताल हुई। कौंसिल आफ स्टेट और पंजाब, बंगाल, उड़ीसा व पश्चिमोत्तर प्रान्त की धारासभाओं ने शोक प्रस्ताव पारित किये। हिन्दुस्तान के वायसराय लार्ड व्हॅवेल ने गांधीजी को सांत्वना संदेश भेजा।

राष्ट्रमाता का एक समुचित स्मारक खड़ा किया जाय ऐसा देश की जनता ने तय किया। विश्वयुद्ध तथा सरकार की आतंकवादी नीतियों के कारण परिस्थिति ऐसी बन गयी थी कि लोग गांधीजी और अन्य कांग्रेस नेताओं को भूल जायँ। परन्तु जनता अपने नेताओं को भूली नहीं। उनके प्रति अपना प्रेम व निष्ठा व्यक्त करने के लिये उन्हें कोई बहाना चाहिये

था। राष्ट्रमाता की मृत्यु से उन्हें वह कारण मिल गया था। देश के प्रमुख लोगों ने कस्तूरबा स्मारक के लिये दान देने का निवेदन प्रकाशित किया। २ अक्तूबर १९४४ को गांधीजी के ७५ वर्ष पूर्ण होने वाले थे। इसलिये ७५ लाख रुपयों की निधि इस निमित्त से एकत्रित कर उन्हें समर्पित की जाय। अगर गांधीजी तबतक जेल से मुक्त हो गये तो उनके ७५ वें जन्म दिन पर यह निधि उन्हें अर्पण की जाय। इस तरह सोचकर काम का आरम्भ हुआ और दान की बरसात होने लगी।

गांधीजी १९४४ मई माह में जेल से छूट गये। इससे दान सहायता का वेग और बढ़ गया। उनके जन्मदिन तक ८० लाख की निधि एकत्रित हो गई। धनवान-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, सरकारी अधिकारी, नौकर, मजदूर, कैदी सबने अपना योगदान दिया।

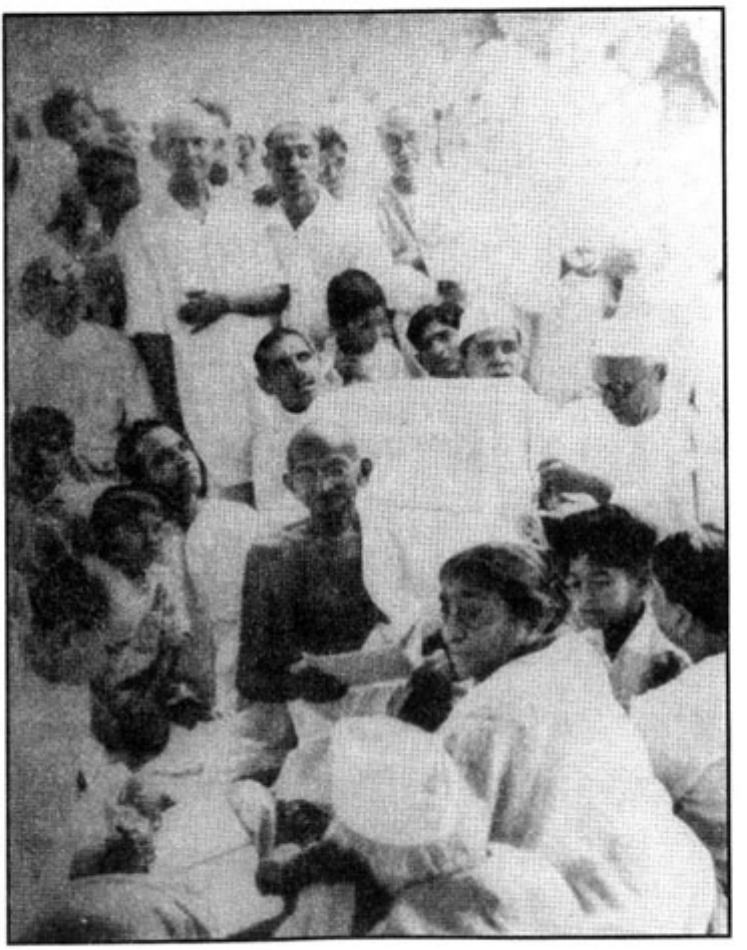

अपने पच्चहत्तरवें जन्म दिन पर गांधीजी सेवाग्राम में ही थे। सभी लोग एकत्रित हुए। आश्रम में एक छोटा-सा समारंभ आयोजित हुआ। श्री सरोजिनी नायडू के हाथों स्मारक निधि का चेक गांधीजी के हाथों में अर्पण किया गया।

पिछले चित्र में गांधीजी के हाथ में चेक दिख रहा है। सामने सरोजिनी देवी बैठी हैं। गांधीजी की बाईं तरफ बिलकुल किनारे की ओर निधि के मंत्री श्री अमृतलाल ठक्कर खड़े होकर भाषण कर रहे हैं।

इस निधि से कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट की स्थापना हुई। इसका विनियोग भी गांधीजी ने एक नयी पद्धति से करने का तय किया। कस्तूरबा एक अशिक्षित, सादी, ग्रामीण महिला थीं। अपनी सेवाशक्ति, त्यागवृत्ति, प्रेम व पवित्र आचरण के संयोग से वे श्रेष्ठ बनीं। उनका स्मारक उन्हें शोभा दे ऐसा होना चाहिये। आज तक सभी निधियों के व्यवस्थापक पुरुष ही रहे हैं। गांधीजी बोले, 'इस निधि की व्यवस्थापक कोई बहन ही होनी चाहिये। यह निधि ग्रामीण महिलाओं के विकास में खर्च होनी चाहिये और यह काम स्त्रियाँ ही करेंगी।' इस अनुसार हर एक प्रान्त में एक स्त्री प्रान्तीय प्रतिनिधि नियुक्त की गई। दो हजार से छोटे गाँवों के विकास की योजना भी बनायी गयी। यह काम करीब दस वर्ष तक ठीक से चला। पैसा तो और भी आया, परन्तु दस वर्ष में ट्रस्ट की अधिकतर निधि समाप्त हो चुकी थी तथा ट्रस्टी मंडल में पुराने लोग या तो मर गये अथवा निवृत्त हो गये, इसलिए निधि के नीति-नियमों में बदल होने से दिशा ही बदल गयी।

निधि ने अपना काम जरूर किया। कस्तूरबा ने अपना जीवन चंदन की तरह घिस डाला था। अपने पति के प्रत्येक कार्य व प्रयोग में उन्होंने उनका साथ दिया था। इसलिये जनता ने 'राष्ट्रमाता' कहकर उनका सम्मान किया। उनके देहत्याग के बाद भी उनका स्मारक जीवंत रहा।

आगाखाँ महल से कस्तूरबा का लगाया तुलसी का पौधा उसी दिन

(गांधीजी को निधि अर्पण की गई उस दिन) गांधीजी ने वृंदावन में लगाया।

० ० ०

४२. विवाहोपरांत संयम

संत कष्ट सहे आपही, सुखी राखे जु समीप ।
आप जरैं तहँ और को, करैं उजेरो दीप ।।

(संत कष्ट सहन कर जो उनके समीप हैं उनको सुखी करते हैं। वैसे ही जैसे खुद जलकर दूसरों के लिये दीपक उजाला करता है।)

सेवाग्राम आश्रम में अनेक वधू-वरों का विवाह हुआ। परन्तु वे बाहर के व्यक्ति रहे। चिमनलाल भाई की कन्या शारदा तथा पारनेकरजी की पुत्री शरद – दोनों आश्रम के कार्यकर्ताओं की पुत्रियों ने दूर के व्यक्तियों से शादी करके अपने-अपने घर बसा लिये। परन्तु कनु व आभा की बात अलग थी। कनु नारायणदास भाई गांधी का लड़का था। गांधीजी के एक सगे चचेरे भाई राजकोट में रहते थे। उनके चारों पुत्रों ने अपने को गांधीजी के कार्यों में अर्पण कर दिया था। उनमें तीसरे पुत्र नारायणदास भाई ने सत्याग्रह आश्रम के अंतिम दिनों में उसके मंत्री का काम सँभाला था। उस आश्रम का विसर्जन होने पर वे राजकोट में राष्ट्रीय शाला चलाने लगे। उनके दूसरे लड़के कनु ने कभी स्कूली शिक्षण नहीं लिया। प्रारम्भ से उसने साबरमती आश्रम में रहकर शिक्षण लिया। उसे वाद्य यंत्र बजाने, फोटोग्राफी, व्यायाम व खेल आदि में बहुत रुचि थी। सेवाग्राम में आश्रम स्थापित होने पर वह यहाँ आकर रहने लगा। गांधीजी को फोटो खींचना पसंद नहीं था, परन्तु कनु की सेवानिष्ठा से प्रसन्न होकर उन्होंने उसे फोटोग्राफी सीखने की दृष्टि से आश्रम में फोटो खींचने की इजाजत दे दी। गांधीजी के आश्रम जीवन के अनेक फोटो कनु के कारण मिल पाते हैं।

१९४० में कलकत्ता से अमृतलाल चट्टोपाध्याय अपने चार बच्चों के साथ सेवाग्राम आकर रहे। उनमें आभा नाम की एक लड़की थी। वह यहाँ आयी तब छोटी थी। परन्तु वह यहीं रहकर पढ़ी-लिखी और बड़ी हुई। आगे जाकर कनु व आभा की शादी तय हुई। १९४५ फरवरी २१ को दोनों की शादी हुई। अगले चित्र में एक पटिये पर इस विधि के लिये बैठे गांधीजी दिख रहे हैं। गांधीजी को ब्रह्मचर्य बहुत प्रिय था। उनको लगता था कि जबतक अपना देश स्वतंत्र नहीं हो जाता तब तक युवक-युवतियों को शादी न करके देश सेवा में जीवन अर्पण करना चाहिये। परन्तु उनके स्वयँ के गांधी परिवार से ऐसे आदर्श बच्चे उन्हें देखने को नहीं मिले। फिर भी मन में असमाधान न रखकर विवाह के इच्छुक जोड़ों को वे आशीर्वाद देते थे। उनके द्वारा जो भी शादियाँ करवाई गईं, उनमें प्रत्येक दम्पत्ति को वे संयम का उपदेश देते थे। 'संतानोत्पत्ति की इच्छा होने पर ही समागम करना, नहीं तो ब्रह्मचर्य पालन, गृहस्थाश्रमी दम्पत्ति अगर इस तरह जीयेंगे तो उनका जीवन ब्रह्मचारी का कहलायेगा।' यह बात वे खास ध्यान देकर कहते।

शादी के बाद वर-वधू को उन्होंने आश्रम में न रखकर सड़क के उस पार तालीमी संघ के परिसर में रहने की सूचना दी। मुन्नालालभाई व कंचनबेन अनेक वर्षों से आश्रम वृत्ति से रहते थे। उन्हें भी आश्रम के बाहर घर करके रहने का गांधीजी ने कहा।

वैवाहिक जीवन भी यदि संयमपूर्वक बिताया जाय तो वह सही अर्थों में गृहस्थाश्रम होगा ऐसा वे मानते थे। चारों ही आश्रम संयम पर ही आधारित हैं अत: विवाह के बाद स्वच्छंद होकर रहने की छूट मिल जाती है, ऐसा अर्थ नहीं करना चाहिये।

दूसरे चित्र में गांधीजी के कनु व आभा के कंधों पर हाथ रखकर घूमने जाते समय का दृश्य है। सभी की मर्यादा गांधीजी समझते थे। अपना विचार व अपने आदर्श वे किसी पर भी जबरदस्ती नहीं लादना चाहते थे। धर्म सम्मत वासना पूर्ति करने वाले पर भी वे पहले जैसा ही

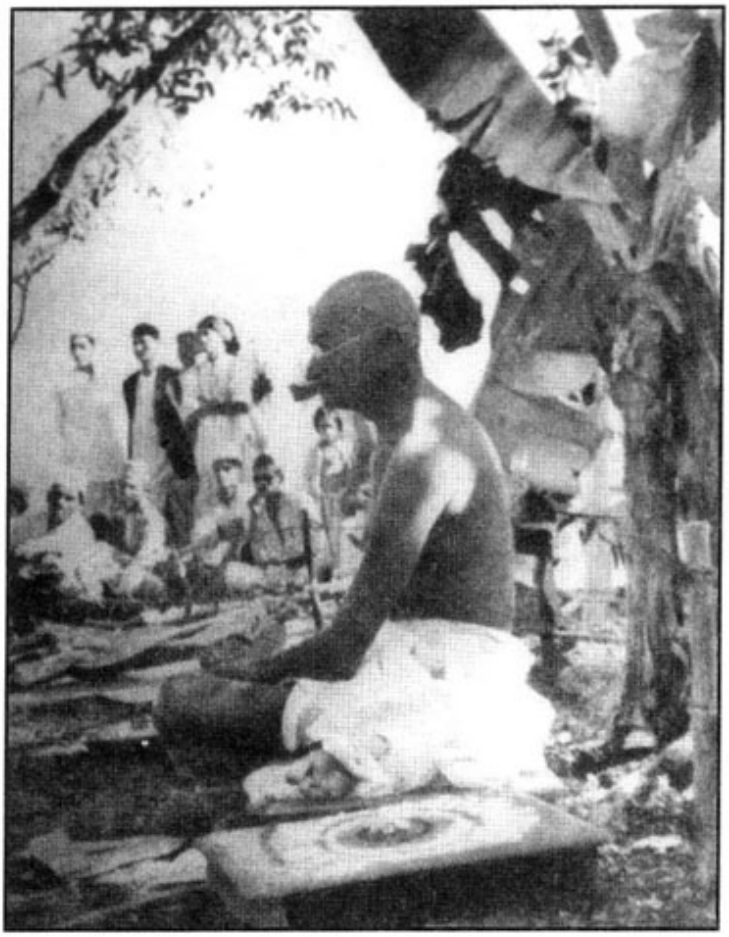

प्रेम करते थे। अपने साथियों के विकास के लिये उन्होंने अपार सहानुभूति तथा दूरदृष्टि रखी इसी कारण से वे असंख्य लोगों से काम ले सके थे।

० ० ०

४३. बीमारी

देहेन्द्रियमन:प्राणै: सुखं दु:खं यदाप्यते ।
इममाध्यात्मिकं तापं विजानीयाद्धि देहिनाम्।।

(देह, इंद्रिय और प्राण के योग से सुख-दु:ख के प्रति समभाव रखना, आध्यात्मिक तप कहलाता है।)

गांधीजी के जीवन में पारमार्थिक जागृति हुई, उसी समय से यानी ऐन युवावस्था से ही उन्होंने अपने शरीर को सत्य के साक्षात्कार का साधन बना लिया था। इसलिये ब्रह्मचर्य व अस्वाद व्रत उन्होंने नियमपूर्वक पाले। वे मानते थे कि बीमार पड़ना एक गुनाह है। उनका आहार-विहार बिलकुल नियमित रहता था। फिर भी उनकी प्रकृति पूर्ण निरोगी नहीं रही। बीच-बीच में वे बीमार पड़ते थे। दूध पीना छोड़ देने पर उन्हें पेचिश हो गयी और अंत में बकरी का दूध लेने पर उनके प्राण बच सके। इस घटना का उल्लेख उनकी आत्मकथा में आया है। १९२२ में उन्हें जेल से इसीलिये छोड़ा गया क्योंकि उनका एपेंडिक्स का आपरेशन करवाना था। १९४२ में भी कैद से छूटने में उनका जूड़ी बुखार ही कारण था। उन्हीं दिनों उनके पेट में हूकवर्म भी हो गये थे। इन ऐतिहासिक बीमारियों को छोड़ दें, तब भी आश्रम जीवन में भी उन्हें बीच-बीच में कुछ न कुछ होता ही रहता था। आगे जाकर उन्हें उच्च रक्तचाप की बीमारी लग गई जो अंत तक रही।

सेवाग्राम में आकर रहने पर अनेक लोगों को मलेरिया व टाइफाइड हुआ। गांधीजी को भी हुआ। उन्हें लगातार बुखार आने लगा। जब उनकी तबियत बहुत बिगड़ गयी तब उन्हें सरकारी दवाखाने में ले

जाकर कुछ दिन रखना पड़ा।

बीमारी में आयी कमजोरी दूर करने के लिये उन्हें बीच-बीच में हवाखोरी के स्थान पर जाकर रहना पड़ता था। उन दिनों में भी उनके जनसम्पर्क व मार्गदर्शन के काम चालू ही रहते।

आगाखाँ महल से जब वे छूटे तब बीमार ही थे। वह बीमारी उन्होंने कुछ महीने भोगी। ठीक होकर जब वे सेवाग्राम आये तो यहाँ पुनः बीमार पड़े। एक बार पेट का दर्द इतना बढ़ गया कि वे दर्द के मारे जमीन पर लोटकर कराहने लगे। उस समय आश्रमवासियों को कस्तूरबा की याद आ गयी।

१९४५ में वे पुनः बीमार पड़े थे। पेट में भारीपन लगने से उन्होंने एरण्ड का तेल लिया उससे दस्त हो गया, कमजोरी इतनी बढ़ गयी कि वे स्नानघर में ही बेहोश होकर गिर पड़े। कुछ समय बाद उन्हें होश आया। इस घटना की खबर किसी को नहीं दी जाय ऐसा उन्होंने अपने पास के लोगों को कह दिया।

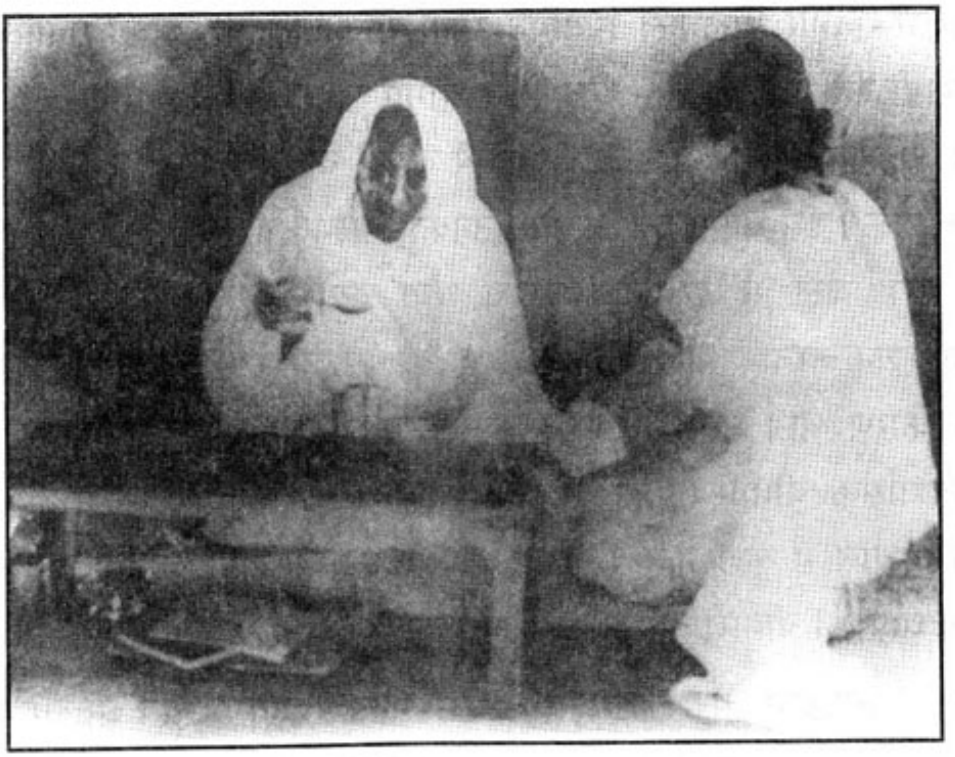

सामने का फोटो उस बीमारी के बाद का है। बीमारी से ठीक हुए गांधीजी दूध पी रहे हैं। पास में उनके चेचेरे भाई की पोती मनु बैठी हैं।

१९४६ की ठंडी में गांधीजी को जबरदस्त खाँसी हो गयी। उन्हें बहुत तकलीफ होने लगी। इसलिये डाक्टर की सलाह पर वे बापूकुटी छोड़कर आखिरी निवास में रहने लगे। इस कुटिया की नींव ऊँची थी, अत: वहाँ की जमीन सूखी और गरम थी। इससे खाँसी में मदद मिलती थी। आखिरी निवास के पूर्व के बरामदे में वे सवेरे सूर्यस्नान लेते थे। उस बरामदे के सामने का विशाल मैदान खाली ही था, अत: उगता सूर्य बहुत समय तक दिखता था।

इस बीमारी से ठीक होने पर गांधीजी २५ अगस्त १९४६ को जो आश्रम से बाहर निकले, तो वापस आये ही नहीं। इसलिये इस निवास को आखिरी निवास कहा जाने लगा।

० ० ०

४४. गाँव और आश्रम

संकेतें लोक वेधावा। येकूनयेक बोधावा ।
प्रपंचही सावरावा । यथानुशक्त्या ।।
प्रपंचसमयो ओळखावा । धीर बहुत असावा ।
संबंध पडों नेदावा । अतिपरिचयाचा ।।
उपाधीस विस्तारावें । उपाधींत न सांपडावें ।

– दासबोध ११-५

(लोगों का ध्यान आकर्षित करके उनको ज्ञान दिया जाय। अपनी शक्ति के अनुसार घर-गृहस्थी सँभाली जाय। अवसर की समझ रहे। धीरज कभी न छूटे। अति-परिचय का सम्बन्ध न होने दें। उपाधियाँ बढ़ायें, लेकिन उनमें बद्ध न हों।)

देश के सात लाख गाँवों में सेगाँव एक था। भारत की प्रजा उसमें रहती है तथा उसका विकास हुए बिना देश का उद्धार होने वाला नहीं, ऐसी दृढ़ भावना होने से गांधीजी सेगाँव में आकर बसे थे। सेगाँव की सेवा करते-करते ही देश के अन्य गाँवों के विकास की कुँजी उनके हाथ लग सकेगी इस उम्मीद के बल पर उन्होंने अनेक प्रयोग किये। गांधीजी के दिनों में आश्रम और सेगाँव का अटूट सम्बन्ध जुड़ गया था। आश्रम की पूरी शक्ति, बुद्धि और कौशल्य व कला का फायदा सेगाँव को दिया जाता था। आश्रम में सेगाँव के मजदूर काम करते थे, यह पहले कहा जा चुका है। एक बार मुन्नालाल भाई ने गांधीजी को सुझाया कि आश्रम के नौकर यहाँ से अपनी मजदूरी नकद लेकर जाते हैं, इसके बदले उन्हें आश्रम रसोड़े में ही भोजन दिया जाय तथा कुछ पैसे ऊपर के खर्च के लिये दिये जावें। भोजन खर्च जितना अधिक आयेगा, उतना खर्च आश्रम वहन करे। इससे आपस में बन्धुभाव बढ़ेगा और आश्रमवासी ग्रामवासियों के जीवन में प्रवेश कर सकेंगे।

गांधीजी को यह योजना पसंद आयी। उन्होंने इसे अमल में लाने की स्वीकृति दे दी। कुछ दिनों यह प्रयोग चला। मुन्नालाल भाई ने इस प्रयोग को सफल बनाने के लिये खूब मेहनत की। नौकरों पर कुछ परिणाम भी हुआ। फिर भी धीरे-धीरे प्रयोग बंद हो गया।

लड़ाई के दिनों में सेगाँव को पूरा अनाज नहीं मिलता था। उन लोगों ने बलवंत सिंह के पास आकर मांग की कि उन्हें आश्रम से कुछ मदद मिले। परन्तु ऐसी मदद देने की आश्रम की स्थिति नहीं थी। यह १९४६ की घटना है। गांधीजी प्रवास में थे। बलवंत सिंह ने उन्हें जब यह बात पत्र द्वारा बतलाई तो उन्होंने बलवंत सिंह की योजना को स्वीकृत कर जमनालालजी की दुकान वालों को पत्र लिखकर सूचना दी कि सेगाँव के लोगों को अनाज की दिक्कत दूर करने में वे मदद करें। गांधीजी कहीं भी हों, सेगाँव की मदद करने की जवाबदारी उन्होंने हमेशा निभाई। वे कभी सेगाँव को भूले नहीं।

गांधीजी जब आश्रम में रहते तब गाँव के लोगों के आपसी झगड़े निपटाने का काम भी करना पड़ता था। एक बार गाँव में झगड़ा हो गया, एक सवर्ण मनुष्य ने हरिजन की आँख फोड़ दी। यह प्रकरण पुलिस में जाने वाला था। गांधीजी ने बीच में पड़कर सवर्ण मनुष्य को समझाया और उसे सलाह दी कि 'जिस हरिजन की आँख फोड़ी उससे सार्वजनिक रूप से माफी मांगे और नुकसान की पूर्ति के लिये १०० रुपये दे।' वह सवर्ण मनुष्य सेगाँव का मालगुजार था। वह रुपये देने को तैयार हो गया पर माफी माँगने को तैयार नहीं हुआ। गांधीजी ने कहा कि, 'मेरी दृष्टि से रुपये का महत्व नहीं। तुम नहीं दे सकते तो मैं दूंगा। परन्तु तुमने जो गुनाह किया है, उसकी क्षमा तो माँगनी ही चाहिए। इस मामले में गरीब हरिजन पर तुम्हारी ओर से अन्याय हुआ है, अत: यह दुहरा पाप क्षमा मांगे सिवाय दूर होने वाला नहीं।' मालगुजार सरल हृदय था, पर दूसरे लोगों ने उसे सिखाकर माफी माँगने से मना करवा दिया। आखिर यह प्रकरण पुलिस में गया। उसमें इस व्यक्ति तथा उसके लड़के को चार व आठ महीने की सजा हुई। इसके सिवाय बहुत रुपया खर्च करना पड़ा सो अलग। गांधीजी की बात नहीं सुनी, इसका उसे पश्चाताप हुआ।

गांधीजी के आखिरी दिनों में सेवाग्राम में रहने वालों में चिमनलाल, मुन्नालाल, बलवंत सिंह, पारनेकर, व कृष्णचन्द्र थे। कृष्णचन्द्र उत्तर प्रदेश के एक पढ़े-लिखे भाई थे। एम.एससी. की परीक्षा उत्तीर्ण होने पर सेवाग्राम आश्रम में आकर रहते थे। उन्होंने आश्रम में कठिन तपश्चर्या की और गांधीजी की परीक्षा में सफल हुए। अपने शरीर को उन्होंने बहुत कष्ट दिया तथा साथियों की खूब सेवा की।

एक बार गांधीजी ने पूछा कि मेरे चले जाने के बाद मरने तक आश्रम में कौन-कौन रहने को तैयार हैं? उन्होंने एक प्रतिज्ञा पत्र बनाया तथा जो लोग सहमत थे उनसे हस्ताक्षर करने को कहा। १७ लोगों ने हस्ताक्षर किये, पर आज की तारीख (१९६८) में उनमें से अकेले चिमनलालभाई ही आश्रम में रहे हैं। अन्य लोग देश के विभिन्न भागों में सेवाकार्य में व्यस्त हैं।

आश्रम में स्थायी रूप से न रहने पर भी आश्रम से सतत सम्बन्ध रखकर, उसके आदर्शों का पालन करनेवाले सेवकों में श्री तात्याजी वझलवार की गिनती होगी। वे नागपुर के एक महाविद्यालय के प्राचार्य थे। १९३९-४० के आसपास उनका सम्बन्ध सेवाग्राम आश्रम से जुड़ा जो जीवनपर्यंत कायम रहा। आगे जाकर उन्होंने नौकरी छोड़ दी और पूरा समय सेवाकार्य में देने लगे। मध्य प्रान्त हरिजन सेवक संघ के वे अध्यक्ष बने। वे बार-बार आश्रम में आकर रहते और आश्रम का काम करते रहते थे।

आश्रम के व्रतों का अक्षरश: पालन करने की तीव्रता श्रीपत बाबाजी में थी। वे मूल तहसील के रहनेवाले थे, विद्वान थे। उनकी वैराग्य भावना प्रबल थी। वे हमेशा मन से परोपकार का सोचते रहते। इस कष्ट सहनेवाले साधक ने १९४२ में 'जितना कमाओ उतना खाओ' का व्रत लिया। इस व्रत के कारण उनका पेट बिगड़ गया। बुढ़ापे में ऐसा व्रत लेने से उन्हें बुखार आने लगा। क्योंकि वे शरीरश्रम से ही कमाई करते थे। वृद्धावस्था के कारण सूत कातने के सिवाय अन्य कोई शरीरश्रम नहीं हो सकता था। कताई से दिनभर की मजदूरी दो पैसे मिलती थी, तो उसी के चने लेकर वे खाते थे। यही क्रम अनेक वर्षों तक चलते रहने से उनकी तबियत बिगड़ती गयी। प्रारम्भ में वे नालवाड़ी के आश्रम में थे। स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में सरकार ने वह आश्रम जप्त कर लिया, अत: वे सेवाग्राम में चरखा संघ के परिसर में रहने लगे। परन्तु उनकी तबियत जब बहुत ही कमजोर हो गई तो आश्रम के लोग आग्रह करके उन्हें आश्रम में ले आये तथा सामान्य भोजन देने लगे। इससे उनकी तबियत थोड़ी सँभली। बाद में उन्होंने कताई, अध्यापन तथा बापूकूटी की सफाई व व्यवस्था में अपना शेष जीवन बिताया।

गांधीजी जब उत्तरभारत में घूम रहे थे, तब भी आश्रम में रचनात्मक काम शुरू ही थे। एक बड़ा कुँआ बनवाया गया। खेती में भी अनेक सुधार किये गये थे। सड़क पर घूमते समय गांधीजी को सड़क की धूल से कष्ट होता था अत: खेतों के बीच रास्ता बनाया गया। ११ फरवरी

१९४८ को जमनालालजी का श्राद्धदिन था। उसमें गांधीजी उपस्थित होंगे ऐसी आश्रमवासियों की अपेक्षा थी। उन्हें आश्रम छोड़े डेढ़ वर्ष हो गया था फिर भी आश्रम के कठिन पेच-प्रसंगों में उनकी सलाह ली जाती थी। परन्तु जिस शुभ दिन की आश्रमवासी राह देखते रहे, वह शुभ दिन कभी आया ही नहीं।

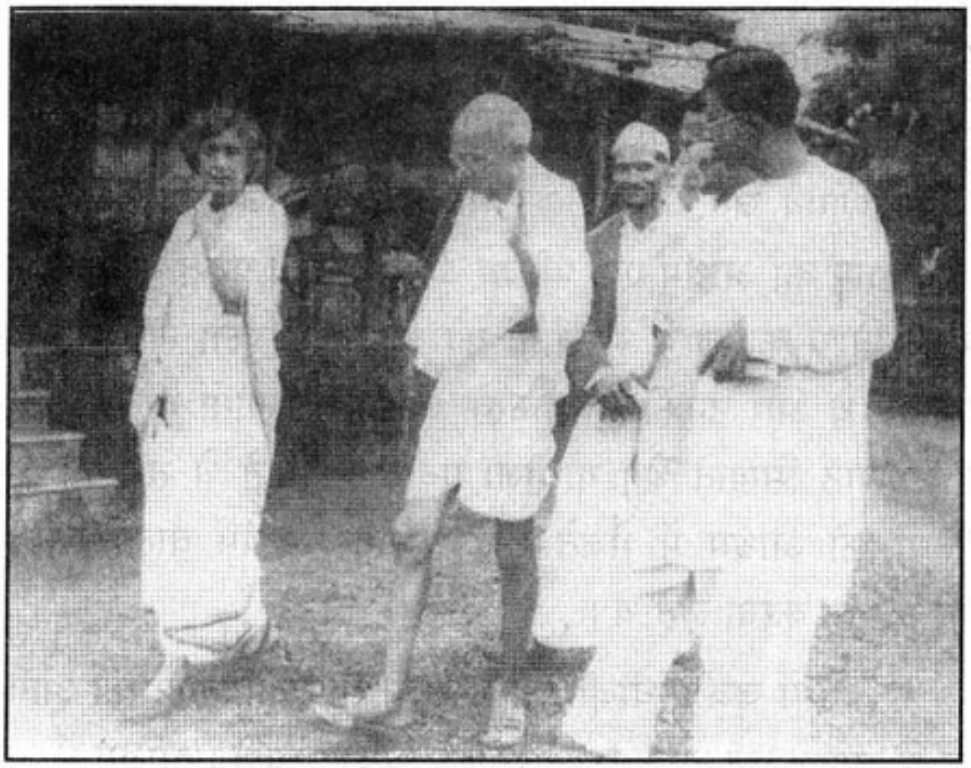

ऊपर के चित्र में गांधीजी आखिरी निवास के बाहर चलते हुए दिख रहे हैं। यह १९४६ के मध्य का समय था, यानी गांधीजी ने हमेशा के लिए आश्रम छोड़ा उसके पहले का। उनके दाँयीं ओर राजकुमारी अमृतकौर हैं तथा बाईं ओर चश्मा लगाये सज्जन उदित गोपाल हैं। ये सज्जन यूनाइटेड प्रेस के वार्ताकार थे। मुंबई में रहते थे। गांधीजी उनसे बात कर रहे हैं।

० ० ०

४५. धर्मानन्द कोसम्बी

वन्हीची ज्वाळा जैसी । वायां जाय आकाशीं ।
क्रिया जिरों दे तैसी । शून्यामाजी ।।

– ज्ञानेश्वरी

(जैसे अग्नि की ज्वाला आकाश में व्यर्थ जाती है। (उसका कोई परिणाम नहीं होता।) उसी प्रकार अपने कर्मों को तुम शून्य में विलीन हो जाने दो, (यानी जैसे कर्म किये ही नहीं, ऐसी चित्तवृत्ति रहने दो)।

'विष्णुमय जग, वैष्णव का धर्म' यह गांधीजी की दृष्टि व वृत्ति थी। सेवाग्राम का आश्रम एक परिवार जैसा था ही। परन्तु गांधीजी अपने बाहर के विश्व कुटुम्ब में से लोगों को आश्रम में बुला लेते थे। उनपर स्नेह रखते थे और उनकी सेवा करके आश्रम के लोगों को भी विश्व-सेवा का पाठ सिखाते थे। गांधीजी प्रवास पर होते थे तब भी अनेक व्यक्तियों को आश्रम में भेजते रहते थे और आश्रम वालों से उनकी प्रेमपूर्वक सेवा करवा लेते थे।

१९४७ में जब गांधीजी देश में फैली साम्प्रदायिकता की आग को बुझाने में लगे थे तब उनके कहने से एक विशिष्ट व्यक्ति आश्रम में आये। उनका नाम आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी था। उनका जन्म गोवा में हुआ था। गरीब परिस्थिति में भी स्वप्रयत्न से पढ़कर वे विद्वान बने। उन्होंने बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया। उन्हें भगवान बुद्ध के विचारों का आकर्षण हुआ। इसलिये उन्होंने पाली भाषा सीखी और बाद में वे बौद्ध बन गये। संस्कृत व पाली भाषा के विद्वान के तौर पर उनका यश सर्वत्र फैला था। वे यूरोप भी घूमकर आये। रूस के लोगों के निमंत्रण पर वे कुछ समय रूस में जाकर भी रहे। वहाँ के लोगों को संस्कृत व पाली भाषा के ग्रंथों का अनुवाद करने में मदद की। वहाँ रहते हुए उन्हें साम्यवादी विचारधारा का आकर्षण हुआ।

१९४७ की जनवरी में जब वे गांधीजी के निमंत्रण पर सेवाग्राम

आश्रम में आये तब उनकी उम्र ७० को पार कर गयी थी। उनकी तबियत बहुत खराब हो चुकी थी। कुछ भी खाया हुआ पचता नहीं था। सारे अंगों में खुजली होती थी। इसलिये सिर्फ पानी पीकर शरीरत्याग करने का उन्होंने सोचा। उन्होंने इसके लिये गांधीजी की सलाह पूछी। गांधीजी ने अपनी सम्मति दी, परन्तु विनोबा को पूछकर काम किया जाय ऐसा पत्र द्वारा सूचित किया।

विनोबा की सलाह के अनुसार कुछ दिन तक कोसंबी अल्पाहार पर रहे। बाद में उनकी सम्मति लेकर उन्होंने ४-५-१९४७ से आहार बंद किया। शरीर धीरे-धीरे क्षीण होने लगा। परंतु उनकी मानसिक प्रसन्नता व बुद्धि की तीव्रता पूर्ववत् कायम थी। उनकी सेवा करने वाले कार्यकर्ता से वे खुले दिल से बात करते थे। अपना अनुभव बताते थे, भगवान बुद्ध के विचारों की चर्चा करते थे। इस बीमारी में अपनी सहनशक्ति बढ़ रही है, ऐसा कहकर वे संतोष व्यक्त करते थे। उनके पुत्र व पुत्री मुंबई में रहते थे। दोनों ने बहुत आग्रह से विनती की कि उन्हें मिलने के लिये आने दिया जाय। परंतु कोसम्बीजी ने इसकी इजाजत नहीं दी। मरने से पहले अपना सारा सामान उन्होंने आश्रम को सुपुर्द कर दिया। अपने लड़के के लिये सिर्फ एक घड़ी रखी। वे मानते थे कि अगर लड़के को उनका कोई स्मृति-चिह्न अपने पास रखने की इच्छा हो तो वह अपूर्ण न रहे।

मृत्यु के पूर्व उन्होंने 'आनापान' भावना का अभ्यास प्रारम्भ किया क्योंकि अंतिम दिनों में कमजोरी के कारण उन्हें बहुत कष्ट होने लगा था। प्रत्यक्ष मृत्यु सामने खड़ी देखकर भी वे विचलित नहीं हुए। जिस मृत्यु-मित्र की वे बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहे थे, उसकी बाँहों में उन्होंने ४-६-१९४७ के दिन शांति से अपनी देह छोड़ दी। मृत्यु से पूर्व उन्होंने दक्षिण का दरवाजा खोलने को कहा और तुरंत ही उनके प्राण-पखेरु उड़ गये।

आगे के फोटो में उनका अस्थिपंजर देह दिख रहा है। पास ही में श्री विनोबाजी व आचार्य कालेलकर दिख रहे हैं। शाम को पाँच बजे

उनकी देह का अग्नि-संस्कार हुआ। विनोबाजी ने वेद मंत्रों का उच्चारण किया, एक भव्य दृश्य था।

उनकी मृत्यु के सविस्तार समाचार गांधीजी को बतलाये गये। उन दिनों गांधीजी दिल्ली में थे। ५-६-१९४७ की शाम की प्रार्थना में गांधीजी ने कोसंबीजी का गौरव किया। 'जो अपना प्रचार करते रहते हैं और करवाते रहते हैं, उनको हम खूब मानते हैं। परंतु जो मौन सेवक है, जो धर्म की सेवा करता है, उन्हें लोग पहचानते तक नहीं। ऐसे एक आचार्य कोसंबी थे। वे भारत के एक प्रमुख विद्वान थे। उन्होंने स्वयँ फकीरी पसंद की थी। उनका जीवन प्रार्थनामय हो गया था। उनका अनुकरण करने की शक्ति परमेश्वर हमें दें।'

० ० ०

४६. उपसंहार

कोई देवता मरा न भगवान मर गया ।
शहंशाह मरा न सुलेमान मर गया ।।
हिन्दू कोई मरा न मुसलमान मर गया ।
इतनीसी बात है कि एक इन्सान मर गया ।।

१९४८ जनवरी में गांधीजी ने दिल्ली में अपने जीवन का 'मुकुटमणि उपवास' किया। वह एक भव्य व पवित्र अवसर था। उनकी कीर्ति ने स्वदेश तथा विदेश में सर्वत्र आशा व श्रद्धा का वातावरण निर्माण किया। सेवाग्राम आश्रम में भी दिल्ली के समाचार आते रहते थे। आश्रम छोड़े गांधीजी को बहुत दिन हो गये थे। उनसे मिलने के लिये आश्रमवासी उत्सुक थे। गांधीजी भी अपने कुटुंबियों में जाकर रहने की बाट जोह रहे थे। देश को स्वतंत्र हुए साढ़े पाँच महीने हो गये थे, परंतु समस्याएँ अधिकाधिक जटिल होती जा रही थीं। दूसरों की बजाय अपनों का दुःख ज्यादा होता है। आश्रम के एक कार्यकर्ता श्री शंकरन् थे। उनकी एकमात्र पुत्री अचानक मर गयी, उससे वे दुःखी थे। श्री किशोरलाल भाई ने पत्र द्वारा गांधीजी को यह सूचना दी। २९ जनवरी को गांधीजी ने किशोरलाल भाई को पत्र लिखा। उसमें उन्होंने लिखा कि 'मैंने शंकरन् को सांत्वना का पत्र लिखा है। सेवाग्राम आने की मेरी योजना अभी भी अनिश्चित है। संभवतः कल इस बारे में तय होगा।'

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होत है, बहुरि करेंगे कब?

ऐसा लगता है कि गांधीजी को अपनी मृत्यु की आहट लग गई थी। उन दिनों उनके मुँह से सांकेतिक वाक्य निकलते थे। अपना कार्यक्रम तय होने से पूर्व उन्होंने शंकरन् को जो सांत्वना पत्र भेजा उसमें लिखा, 'मैं तुम्हें क्या लिखूँ? तुम्हें मैं कौन-सी सांत्वना दे सकता हूँ? मृत्यु सच्चा मित्र है। हमारे अज्ञान के कारण ही हम शोक करते हैं।

सुलोचना की (शंकरन् की कन्या की) चेतना कल थी, आज है और कल भी रहेगी। अलबत्ता शरीर का तो नाश होना ही चाहिये।'

आखिर ३० जनवरी का दिन आया। आश्रम के लोग अपने दैनंदिन कामों में व्यस्त थे। शाम का भोजन हुआ और वर्धा से सेवाग्राम फोन से सूचना आयी कि 'शाम को प्रार्थना के लिये जाते समय किसी मनुष्य ने गांधीजी पर गोलियाँ चलाई और उनके प्राण गये।'

सर्वप्रथम तो यह सूचना किसी को सत्य नहीं लगी। परंतु उसका समर्थन देने वाले संदेश आने लगे तब उस पर विश्वास करना ही पड़ा। वर्धा के कलेक्टर व पुलिस अधिकारी ने आकर सहानुभूति दर्शायी। आश्रमवासियों ने प्रार्थना की। इस मौके पर आश्रम से किसी व्यक्ति को दिल्ली जाकर अंतिम यात्रा में शामिल होना चाहिये। किसी ने इसके लिये अपनी तैयारी दिखलायी व वे सज्जन गये भी। उन्हें गांधीजी की देह के अंतिम दर्शन हुए। परन्तु सभी आश्रमवासियों को गांधीजी की भस्म के दर्शन से ही संतोष करना पड़ा। बाद में पवनार परिसर में धाम नदी के पात्र में उस भस्म का विसर्जन किया गया। तब से प्रतिवर्ष १२ फरवरी को उस स्थान पर सर्वोदय मेला लगता है।

आखिर गांधीजी का देहोत्सर्ग आश्रम में न होकर भारत की राजधानी नयी दिल्ली में हुआ। आश्रम की पवित्र जगह को हत्या के पाप का स्पर्श नहीं हुआ। इसे ईश्वरीय संकेत ही मानना चाहिए। दिल्ली का इतिहास मानवीय क्रूरता और रक्तपात से भरा हुआ है। वहाँ पुराने जमाने से अनेक उथल-पुथल हुई है। राजनीति पर अध्यात्म का प्रकाश पड़े, मनुष्य के मन में शान्ति और प्रेम का साम्राज्य स्थापित हो, इसके लिये भगीरथ प्रयत्न करते हुए अपने अपूर्व सत्याग्रह युद्ध में महात्मा गांधी ने अपनी बलि दी। वास्तव में वे देवताओं के प्रिय तथा प्रियदर्शी थे।

सखिये वो आहेती उदंड वेडे, ऐसे ते सज्जन थोडे।
तयांची संगति जोडे, परमभाग्यें।।

साहाती बोलणें उणें, न पुसतां सागणें।
समचि देखणें, उणें–अधिक नाहीं।।
अभिमान नावडे, धांवती दीनांकडे।
तयांचे जे उकिरडे, महाल त्यांचे।।
रामी रामदास वास, पहातो रात्री–दीस।
ऐसीयांचा सौरस, देईं राघवा।।

(हे मित्र! पागल–समान सज्जन बहुत कम होते हैं। ऐसे लोगों का संग भाग्य से मिलता है। वे दूसरों के कटु–वचन सहते हैं। बिना पूछे मार्गदर्शन करते हैं। सभी को समान भाव से देखते हैं। उन्हें अहंकार नहीं भाता। वे हमेशा दीनों की तरफ ध्यान देते हैं। उनके गंदे स्थान को भी महल की तरह समझते हैं। रामदास दिन–रात भगवान् से यही माँगते हैं कि ऐसे लोगों का सहवास मिले।)

० ० ०

श्रीसद्गुरुचरणार्पणमस्तु ।

सेवाग्राम सेवकों के लिये

(बापूजी एक पोथी में आश्रमवासियों के लिये समय-समय पर सूचनायें लिख कर रखते थे। पोथी के प्रारंभ में लिखा था – ''सेगाँव सेवकों के लिये''। इस पोथी में से कुछ प्रसाद नीचे दिया है।)

– इसमें लिखा जाय उसे व्यवस्थापक लिख लें और दूसरों को सुना दें। यह पोथी हमेशा मेरे सामने रहनी चाहिये।

यह बात हम याद रखें :–

– थूक भी मल है। इसलिये जिस जगह हम थूकें या मैले हाथ धोवें, वहीं बरतन कभी साफ न करें।

(ता. ६-८-१९३८)

– मेरी सलाह है कि सब नियमपूर्वक सूत्रयत्र करें। उस बात में हमें बहुत सावधान रहना चाहिये।

(ता. ३-१-१९४०)

– खाने के बारे में हर एक को मर्यादा रखना आवश्यक है। गुड़ का, घी का, दूध का, भाजी का प्रमाण होना चाहिये। भाजी एक समय के लिए आठ औंस काफी समझी जाय। भोजन में कुछ बिगड़े तो उसकी टीका खाने के समय करना असभ्यता है। इसलिये हिंसा है। खाने के बाद चिट्ठी लिखकर व्यवस्थापक को बताया जाय। कोई चीज कच्ची रह जाय तो छोड़ देना। इतनी भूख रह जाय तो कोई हानि नहीं होगी, लेकिन गुस्सा न किया जाय।

– सब काम सावधानी से होना चाहिये, हम सब एक कुटुम्ब हैं, इसी भावना से काम लेना आवश्यक है।

(ता. २२-१-१९४०)

– आजकल मैं जो कुछ लिखता हूँ उसको आज्ञारूप न माना जाय। सब अपनी बुद्धि का उपयोग करके जो करें वही सही माना जाय।

(ता. २४-१-१९४०)

– नमक भी चाहिये उतना ही लेवें। पानी तक निकम्मा खर्च न करें। मैं आशा करता हूँ सब (लोग) आश्रम की हर एक चीज अपनी और गरीब की है ऐसा समझकर चलेंगे।

(ता. ३०-१-१९४०)

– लड़के या बड़े आपस में या लड़कियों से निरर्थक मजाक न करें। काम की बात में निर्दोष विनोद को जगह है। यह एक कला है। प्रथम तो बगैर कारण मौन ही धारण करना शुद्ध बोली की जड़ है।

– आश्रम में इर्दगिर्द बहुत गंदगी रहती है। इसलिये एक आश्रमवासी को सफाई की जिम्मेवारी सिर पर लेनी चाहिये... अहिंसा में शौच (स्वच्छता) तो आता ही है।

(ता. १५-४-१९४१)

एकादश व्रत से फलित होने वाले और सुव्यवस्था के लिये अन्य उपनियम निम्नलिखित हैं :-

– हर एक मनुष्य जो कुछ करे, कहे सो विचार कर और विचारपूर्वक करे। जो कुछ करे, उसमें ध्यानावस्थित और तन्मय हो जाय...

– सब खाना औषध समझ कर और शरीर को आरोग्यवान रखने के लिये खाया जाय और शरीर की रक्षा भी सेवाकार्य के लिये ही की जाय। उस दृष्टि से मनुष्य को मिताहारी अथवा अल्पाहारी होना चाहिये।

– कोई रास्ते में न थूके, न नाक साफ करे, ऐसी क्रिया एकांत जगह में जहाँ किसी का चलना-फिरना नहीं होता वहीं की जाय।

– कोई आश्रम देखने को आते हैं अथवा हमारे अतिथि हैं तो उनसे हम मोहब्बत करें। उनको परायापन नहीं लगना चाहिये।

– आश्रम में सब वस्तु अपनी जगह पर होनी चाहिये और कोना-कोना साफ होना चाहिये। दरवाजे पर धूल नहीं होनी चाहिये। वह चिकने नहीं होने चाहिये।

– सामुदायिक काम में सब पूरी हाजिरी भरें, बरतन माँजने में खूब सफाई होनी चाहिये।

– पाखाने हमेशा सूखे होने चाहिये। मैले पर सूखी धूल हमेशा होनी चाहिये।

– प्रार्थना में जो कुछ है उसका अर्थ बराबर समझें। आश्रम की सब वस्तु निजी है ऐसा समझकर उसकी रक्षा करें, उसको इस्तेमाल करें।

(ता. ८-१२-१९४१)

– आश्रम में सर्वत्र सुघड़ता एवं शान्ति होनी चाहिए।

(ता. २७-४-१९४२)

नौकरों संबंधी :-

– बात यह है कि हम अपना जीवन विचारमय करें। काम कम करना है तो कम करें, लेकिन जो करें, जहाँ तक बन पड़े वहाँ तक संपूर्ण करें। इसीलिये मैंने कहा है कि अगर हम अपने जीवन को गाते हैं ऐसा करें और सेवाग्राम को आदर्श बना सकें तो हमने सब किया।

(ता. १९-१-१९४५) (गुजराती से अनूदित)

सेवाग्राम - वर्धा
परिसर
नागपुर
नागपुर
मदनी
सेवाग्राम
उत्तर
रेल्वे लाईन
आर्वी
बस स्टॅंड
रेल्वे स्टेशन
हिंगणघाट
यवतमाळ

क्रम	स्थान	बापु-कुटी से दूरी अंदाजन अंतर कि.मी.
१	बापू-कुटी	०
२	नयी तालीम परिसर	०
३	गांधी सेवा संघ	१
४	सर्व सेवा संघ	१
५	कस्तूरबा हेल्थ सोसायटी	१
६	महिला आश्रम, वर्धा	६
७	काकावाड़ी	६
८	शिक्षा मंडल	७
९	बजाज वाड़ी	७
१०	गांधी ज्ञान मंदिर	७
११	गांधी पुतला	६
१२	लक्ष्मी-नारायण मंदिर	८
१३	स्वराज्य भंडार	८
१४	मगन संग्रहालय (म्यूजियम)	९
१५	गोसेवा गोरस भंडार	९
१६	मगनवाड़ी ग्रामोद्योग अनुसंधान	९
१७	राष्ट्रभाषा प्रचार समिति	९
१८	गांधी स्मारक कुष्ठसेवा संस्थान	९
१९	मातृसेवा संघ	९
२०	गीताई मंदिर, गोपुरी	७
२१	विश्वशांति बौद्ध स्तूप	७
२२	ग्रामसेवा मंडल, गोपुरी	७
२३	कृषि गो सेवा संघ, गोपुरी	७
२४	गोसेवा चर्मालय, नालवाड़ी	८
२५	कुष्ठधाम, दत्तपुर	९
२६	ग्रामोपयोगी विज्ञान केंद्र	९
२७	विनोबा आश्रम पवनार (ब्रह्म विद्या मंदिर)	७

सेवाग्राम आश्रम
कुआँ
रसोई घर
आदि निवास
खादी भंडार
यात्री निवास
बा कुटी
प्रार्थना स्थल
आखिरी निवास
बापू कुटी
सेवाग्राम गांव की ओर
गांधी चित्र प्रदर्शनी
बापू का दफ्तर
परचुरे कुटी
किशोर कुटी
महादेव कुटी
बजाज भवन
रुस्तम भवन
गौरी भवन
आनन्द निकेतन
कला भवन
आनन्द निकेतन
नयी तालीम कुटी
दफ्तर
शांति भवन
पुराना डाक घर
नया डाक घर
वर्धा की ओर
डेयरी
उत्तर
अन्तर्राष्ट्रीय छात्रालय
महादेवभाई स्मारकभवन
कस्तूरबा दवाखाना

भक्तीची ते जाती ऐसी ।
सर्वस्वासी मुकावें ।।

– तुकाराम

भक्ति की जात ही ऐसी होती है, जो अपना सबकुछ त्याग दे।

मेरे मित्र मेरा सम्मान दो प्रकार से कर सकते हैं। मेरा बतलाया कार्यक्रम अपने जीवन में अमल में लावें, अथवा उस पर उनका विश्वास न हो तो अपनी पूरी शक्ति से मेरा विरोध करें।

(यंग इंडिया, १२-६-१९२४)

बात तो यह है कि अहिंसावादी उपयोगितावाद का समर्थन नहीं कर सकता। वह तो 'सर्वभूतहिताय' यानी सबके अधिकतम लाभ के लिए ही प्रयत्न करेगा और इस आदर्श की प्राप्ति में मर जायेगा। इस प्रकार वह मरना इसलिए चाहेगा कि दूसरे जी सकें। मरकर वह दूसरों की सेवा के साथ अपना कल्याण भी करेगा। सबके अधिकतम सुख में अधिकांश का अधिकतम सुख भी आ जाता है। और इसलिए अहिंसावादी और उपयोगितावादी कई बार एक ही रास्ते पर मिलेंगे, किंतु अंत में ऐसा अवसर भी आयेगा जब उन्हें अलग-अलग रास्ते पकड़ने होंगे और किसी-किसी दशा में एक दूसरे का विरोध भी करना पड़ेगा। सच कहें तो उपयोगितावादी कभी अपनी बलि नहीं दे सकता। किंतु अहिंसावादी तो हमेशा मिट जाने को तैयार रहेगा।

(यंग इंडिया ९-१२-१९२६)

गांधी सेवा संघ प्रकाशन

	लेखक/संपादन	पृष्ठ	मूल्य
१. गांधी सेवा संघ का इतिहास : अहिंसा के प्रयोग	अभय प्रताप	५६८	४००
२. अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय : रचनात्मक कार्यक्रम (गांधीजी के वचनों का संकलन)	महात्मा गांधी सं. कनकमल गांधी	२०८	१५०
३. नयी तालीम : प्रयोग, प्रसार एवं परिणाम	शिवदत्त	८१५	६००
४. खादी : एक ऐतिहासिक समग्र-दृष्टि	प्रदीप दीक्षित	४४६	३५०
५. मेरा जीवन विकास : रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा अंत्योदय	अण्णा सहस्रबुद्धे	२५०	१००
६. भारतीय समाज की वैज्ञानिकता (अण्णा-अप्पा मित्र-मिलन)	कनकमल गांधी	१००	४०
७. नयी तालीम : गांधी प्रणीत शिक्षणविषयक प्रयोगांचा इतिहास (मराठी)	रमेश पानसे	३५०	३५०
८. गुरु-शिष्यांचा हृदय-संवाद (मराठी) (केदारनाथजी व किशोरलालभाई यांच्याशी प्रत्यक्ष आणि पत्रसंवाद)	रणजित् देसाई	२२४	१००
९. पुण्यधाम सेवाग्राम	प्रेमा कंटक अनु. कनकमल गांधी	१६०	१००

प्राप्ति स्थान :

गांधी सेवा संघ, महादेवभाई भवन

पो. सेवाग्राम – ४४२१०२ जिला – वर्धा

फोन : ०७१५२ - २८४७२५

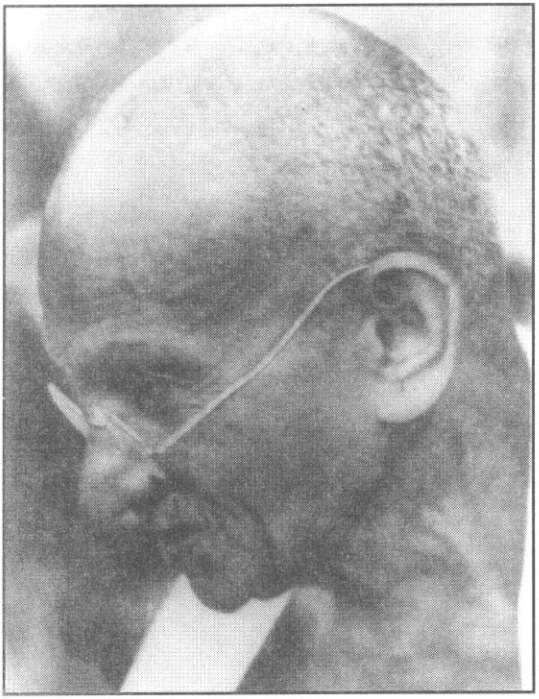

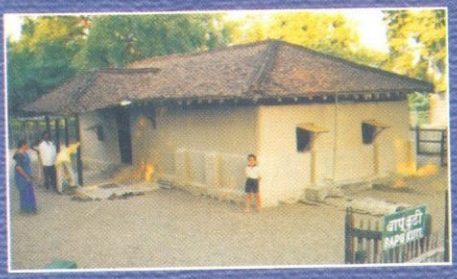

मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।

आप यह विश्वास रखें कि मैं जिस तरह से रहना चाहता हूँ ठीक उसी तरह से आज रह रहा हूँ। जीवन के प्रारंभ में ही अगर मुझे अधिक स्पष्ट दर्शन होता तो मैं शायद जो करता, वह अब जीवन के संध्याकाल में कर रहा हूँ। यह मेरे जीवन की अंतिम अवस्था है। मैं तो नींव से निर्माण करके ऊपर तक जाने के प्रयास में लगा हूँ। मैं क्या हूँ, यह यदि आप जानना चाहते हैं तो मेरा यहाँ (सेवाग्राम) का जीवन आप देखिये तथा यहाँ के वातावरण का अध्ययन कीजिये।

सेवाग्राम, १९३७ — महात्मा गांधी

विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्।
इस गाँव में परिपुष्ट एवं मंगलमय विश्व का दर्शन हो।

गांधी सेवा संघ * सेवाग्राम आश्रम

मूल्य १००रु.